प्रकाशक—
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
१९५-१, हरिसन रोड,
कलकत्ता।
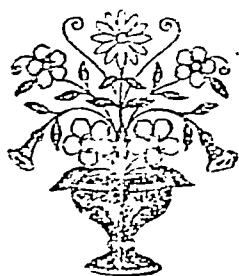
मुद्रक—
वा सु दे व
आर्यभूषण प्रेस, ब्रह्मघाट,
बनारस।

॥ श्री ॥

कृष्णाकान्तका वसीयतनामा

—:※:—

प्रथम खण्ड

—:※:—

पहला परिच्छेद

हरिद्रा ग्राममें एक घर बहुत बड़े जमींदारका था। उन जमींदार साहबका नाम कृष्णकान्त राय है। कृष्णकान्त राय बहुत बड़े धनी हैं; उनकी जमींदारी की आय कोई २ लाख रुपये है। यह सम्पत्ति उनकी और उनके भाई रामकान्त रायकी पैदा की हुई है। दोनों भाइयों ने साथ ही धन कमाया था। दोनों भाइयोंमें बड़ा प्रेम था; एकके मनमें दूसरेके प्रति यह सन्देह कभी नहीं हुआ कि एक दूसरेको ठग सकता है। समूची जमींदारी बड़े भाई कृष्णकान्तके नामसे खरीदी गई थी। सबकी रसोई एक थी। रामकान्त रायके पुत्र था—उसका नाम गोविन्दलाल था। पुत्र पैदा होनेके समय ही रामकान्तके मनमें यह सन्देह हुआ था कि दोनोंकी उपार्जित सम्पत्ति एकके नाम है, अतः पुत्रकी मङ्गल-कामनाके लिये लिखा-पढ़ी हो जाना अच्छा है। कारण, वे इस बातसे तो निश्चिन्त थे कि उनके

बड़े भाई कभी अन्याय कर नहीं सकते; फिर भी, कृष्णकान्तके परलोक-गमनके बाद उनके पुत्र क्या करेंगे, इसका क्या ठिकाना? किन्तु लिखा-पढ़ीकी बात सहज ही कह न सके—आज कहूँगा, कल कहूँगा—यही करने लगे। एक बार जरूरत पड़नेपर वह अपने तालुका गये और अकस्मात् वहीं उनकी मृत्यु हो गई।

यदि कृष्णकान्त यह चाहते कि भतीजेको वंचित कर उसकी सारी सम्पत्ति अकेले भोगें तो इसमें कोई अड़चन न थी। किन्तु कृष्णकान्तके मनमें ऐसी कोई बुरी अभिसन्धि न थी। उन्होंने गोविन्दलालको अपनी गृहस्थीमें अपने पुत्रोंकी तरह पालन करना शुरू किया तथा एक विल बनाकर रामकान्त रायका प्राप्य आधा अंश गोविन्दलालके नाम लिख देनेके लिये तैयार थे।

कृष्णकान्त रायके दो लड़के और एक लड़की है। बड़े लड़केका नाम हरलाल, छोटेका विनोदलाल है, कन्याका नाम शैलवती है। कृष्णकान्तने इस तरह विल किया कि उनकी मृत्युके बाद गोविन्दलालको आठ आना, हरलाल और विनोदलाल हरेकको तीन आना, गृहिणीको एक आना और एक आनेका भाग शैलवतीको उनकी सम्पत्तिसे मिले।

हरलाल बड़ा निरंकुश है। वह पितासे ढीठ मुँहफट था। बङ्गालियोंका विल प्रायः छिपा नहीं रहता। विलकी खबर हरलालको भी लग गई। हरलालने देख-सुनकर लाल आँखें कर पितासे पूछा—"यह क्या हुआ? गोविन्दलालको आधा भाग और हम लोगोंको तीन-तीन आना?"

कृष्णकान्तने कहा—"न्यायका कार्य हुआ है; गोविन्दलालके पिताका आधा हिस्सा उसे मिल रहा है।

हर०—गोविन्दलालके पिताका क्या हक है? हमारी पैतृक सम्पत्तिका हकदार वह कौन है? फिर माता-बहनका प्रतिपालन हम करेंगे, उनका एक-एक आना हक कैसा? इसके बदले उनके भरण-पोषणकी बात लिख जाइये।

कृष्णकान्त कुछ रुष्ट होकर बोले—"बेटा, हरलाल! सम्पत्ति मेरी है; तुम्हारी नहीं। मेरी जिसे इच्छा होगी दे जाऊँगा।"

हर०—आपकी बुद्धि तो सठिया गई है। आपको अपनी मनमानी मैं करने न दूँगा।

कृष्णकान्त क्रोधसे लाल होकर बोले—"हरलाल! आज यदि तुम लड़के होते तो गुरुजीको बुलवाकर तुम्हारी बेंतसे खबर लिवाता।"

हर०—मैंने लड़कपनमें अपने गुरुकी दाढ़ी फूंक दी थी—अब उसी तरह इस विलको जला दूँगा।

कृष्णकान्त इसपर कुछ न बोले। उन्होंने विल निकालकर फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। उसके बदले एक नया विल उन्होंने लिखवाया। उसमें गोविन्दलालको ८ आना, विनोदलालको पाँच आना, अपनी स्त्रीको एक आना, शैलवतीको एक आना और हरलालको भी केवल एक आना लिखा।

इसपर क्रुद्ध होकर हरलाल घर छोड़ कलकत्ता चले गये। वहाँसे उन्होंने पिताको एक पत्र लिखा, जिसका मर्म इस तरह है:—

"कलकत्तेके पण्डितोंने निर्णय किया है कि विधवा-विवाह शास्त्र-सम्मत है। मैंने विचार किया है कि मैं भी एक विधवा-विवाह करूँगा। यदि आप उस विलको बदलकर एक नया विल करें, जिसमें मुझे आठ आना हिस्सा लिखा हो और तुरत उसकी रजिस्ट्री हो जाय तो यह विचार मैं बदल दूँगा। अन्यथा शीघ्र ही एक विधवासे शादी करूँगा।"

हरलालने मनमें सोचा था कि कृष्णकान्त इससे भयभीत होकर विल बदलकर उनके नाम अधिक सम्पत्ति लिख देंगे। किन्तु कृष्णकान्तका उन्होंने जो उत्तर पाया, उससे वह भरोसा जाता रहा। कृष्णकान्तने लिखा :—

"तुम मेरे त्याज्य पुत्र हो। तुम्हारी जिससे इच्छा हो, शादी करो। मेरी जिसे इच्छा होगी, सम्पत्ति दूँगा। तुम्हारे विवाह कर लेनेपर मैं यह विल बदलूँगा अवश्य, किन्तु उसमें सिवा तुम्हारी हानिके लाभ न होगा।"

इसके कुछ ही दिनों बाद हरलालने खबर भेजवा दी कि उन्होंने विधवा-विवाह कर लिया है। कृष्णकान्तने फिर विल फाड़ डाला। नया विल लिखा गया।

पड़ोसमें ब्रह्मानन्द घोष नामके एक गरीब भले आदमी रहते थे। कृष्णकान्तको बड़े भैया कहा करते थे। उन्हीं द्वारा कृपापूर्वक प्रतिपालित भी होते थे।

ब्रह्मानन्दकी हस्तलिपि बड़ी सुन्दर होती है। यह सब लिखा-पढ़ी उन्हींके द्वारा होती थी। कृष्णकान्तने उसी दिन ब्रह्मानन्दको

बुलाकर कहा—"खाना-पीना समाप्त कर यहाँ आना। नया बिल तैयार करना होगा।"

विनोदलाल वहाँ मौजूद थे। उन्होंने कहा—"अब फिर बिल क्यों बदला जा रहा है?"

कृष्णकान्तने जवाब दिया—"इस बार तुम्हारे बड़े भाईके नाम शून्य होगा।"

विनोद०—यह अच्छा न होगा। अपराधी वह हो सकते हैं, किन्तु उनके एक पुत्र है—वह शिशु निरपराध है। उसका क्या होगा?

कृष्ण०—उसके नाम एक पाई लिख दूँगा।

विनोद०—एक पाई भाग का मूल्य ही क्या है?

कृष्ण०—मेरी आय कोई २ लाख है। उसका एक पाई भाग तीन हजार रुपये से ऊपर हुआ। इससे अधिक न दूँगा।

विनोदलालने बहुत समझाया, किन्तु मालिकका हृदय परिवर्त्तन न हुआ।

—:*:—

दूसरा परिच्छेद

ब्रह्मानन्द नहा-खाकर सोनेकी फिक्रमें थे, ऐसे समय आश्चर्य से उन्होंने देखा कि उनके सामने हरलाल राय हैं। हरलाल उनके सिरहाने बैठ गये।

ब्रह्मा०—अरे, बड़े बाबू? कब घर आये?

हर०—अभी घर गया नहीं हूँ।

ब्रह्मा०—एकदम यहीं आये हो? कलकत्तेसे कब आये?

हर०—कलकत्तेसे दो दिन हुए आये मुझे। दो दिन कहीं और छिपा रहा। क्या फिर नया विल होने जा रहा है?

ब्रह्मा—ऐसा ही तो सुन रहा हूँ!

हर०—मेरा हिस्सा इस बार शून्य होगा।

ब्रह्मा०—मालिक अभी क्रोधमें ऐसा ही कह रहे हैं, किन्तु यह क्रोध रहेगा नहीं।

हर०—आज शामको लिखा-पढ़ी होगी? तुम लिखोगे?

ब्रह्मा०—क्या करूँ भाई! मालिकके कहने पर नहीं कैसे कर सकता हूँ?

हर०—ठीक है, इसमें तुम्हारा क्या दोष? कुछ व्यापार करना चाहते हो?

ब्रह्मा०—थप्पड़ घूंसेसे? तो कर लो, वही।

हर०—यह नहीं, एक हजार रुपये।

ब्रह्मा०—विधवा-विवाह करनेके लिए क्या?

हर०—हाँ, वही।

ब्रह्मा०—उम्र तो बीत चुकी है।

हर०—तो एक नया काम करो! अभी शुरू कर दो, बयाना पहले ले लो।

यह कहकर ब्रह्मानन्दके हाथपर हरलालने पांच सौ रुपयेके नोट रख दिये।

ब्रह्मानन्दने उलट-पुलटकर देखा और फिर कहा—"यह लेकर मैं क्या करूँगा ?"

हर०—घरमें पूँजी बना लो। दस रुपये मोती ग्वालनको दे देना।

ब्रह्मा०—ग्वालन-फालनका कोई इलाका थोड़े ही रखा हुआ है। लेकिन मुझे करना क्या होगा ?

हर०—दो कलमें बनाओ। दोनोंका खत एक समान हो।

ब्रह्मा०—अच्छा भाई ! जो कहोगे, वही सुनना पड़ेगा।

यह कहकर घोष महाशयने दो नयी कलमें लेकर एक समान उसका खत काटा। साथ ही लिखकर भी देख लिया कि दोनोंकी लिखावट एक समान है।

तब हरलालने कहा—"इसकी एक कलम सन्दूकमें बन्द कर रखो। जब बिल लिखने जाना तो यह कलम साथ ले जाना और इसीसे लिखना। दूसरी कलम लेकर अभी मेरे सामने लिखा-पढ़ी करनी होगी। तुम्हारे पास अच्छी रोशनाई है ?

ब्रह्मानन्दने दावात निकालकर लिखकर दिखाया। हरलालने कहा—"ठीक है, यही दावात लेकर लिखने जाना।"

ब्रह्मा०—तुम्हारे घरका कलम-दावात नहीं है कि मैं इन्हें लादकर ले जाऊँगा ?

हर०—मेरा दूसरा उद्देश्य है—नहीं तो तुम्हें इतने रुपये क्यों देता ?

ब्रह्मा०—मैं भी वही सोच रहा हूँ—ठीक कहते हो भैया ?

हर०—तुम्हारे आज दावात-कलम लेकर जानेपर लोग समझ सकते हैं, कि आज यह नई बात क्यों ? लेकिन सरकारी कलम-दावातकी निन्दा कर देनेसे ही सारी बातें छिप जायँगी।

ब्रह्म०—अरे, सरकारी कलम-दावात ही को क्यों ? सीधे सरकारकी ही निन्दा कर सकता हूँ।

हर०—इतनी जरूरत न पड़ेगी। अब कामकी बात सुनो।

तब हरलालने दो कागज लिखा-पढ़ीवाले निकाले। ब्रह्मानन्दने उन्हें देखकर कहा—"यह तो सरकारी कागज जान पड़ता है ?"

"सरकारी नहीं है—लेकिन वकीलोंके यहाँ इसी कागजपर लिखा-पढ़ी होती है। मैं जानता हूँ, पिता भी इसी कागजपर लिखा-पढ़ी कराया करते हैं। इसीलिये इन कागजोंको मैंने जुटा रखा है। मैं जो बोलता हूँ—इस कागजपर इसी कलम-दावातसे लिखो तो।"

ब्रह्मानन्द लिखने लगे। हरलालने एक विल लिखा दिया। उसका मर्म यही है कि कृष्णकान्त विल लिख रहे हैं—उनके नाम जो सम्पत्ति है, उसका बँटवारा कृष्णकान्तके मर जानेपर इस तरह होगा। जैसे विनोदलाल तीन आना, गोविन्दलाल एक पाई, गृहिणी एक पाई, शैलवती एक पाई; हरलालका पुत्र एक पाई; हरलाल ज्येष्ठ पुत्र हैं, इसलिये बारह आना।

लिख जानेपर ब्रह्मानन्दने कहा—"विल तो तैयार हो गया—अब दस्तखत कौन करेगा ?

"मैं।" यह कहकर हरलालने कृष्णकान्त रायका और चार गवाहोंके दस्तखत बना दिये।

ब्रह्मानन्दने कहा—"ठीक है; लेकिन हुआ है तो यह जाली।"

हर०—यही असली विल है—शामको जो लिखोगे वह जाली होगा।

ब्रह्मा०—कैसे ?

हर०—जब तुम विल लिखने जाना तो इस विलको अपनी बगलबन्दीकी जेबमें छिपाकर लिये जाना। वहाँ जाकर इसी कलम-दावातसे उनके इच्छानुसार विल लिखना। कागज, कलम, रोशनाई, लेखक, हरएक एक होगा, अतः दोनों विलमें कोई फर्क देखनेमें न आयेगा। बादमें विलके सुनने और दस्तखत हो जानेके बाद अन्तमें तुम अपने दस्तखतके लिये लेना। दस्तखत करनेके लिये जरा पीछे फिर जाना और उसी समय सबकी आँख बचाकर विल बदल देना। यह विल मालिकको देना और वह विल लाकर मुझे लौटा देना।

ब्रह्मानन्द घोष विचारमें पड़ गये। फिर बोले—"लेकिन खूब बुद्धि लड़ाई है।

हर०—क्या सोच रहे हो ?

ब्रह्मा०—इच्छा तो जरूर होती है—लेकिन डर मालूम होता है। तुम अपने रुपये वापस ले लो। मुझसे जालसाजी न होगी।

"लाओ रुपये।" यह कहकर हरलालने हाथ फैलाया। ब्रह्मानन्द घोषने रुपये लौटा दिये। नोट लेकर हरलाल लौट गये। तब ब्रह्मानन्दने उन्हें फिर बुलाया—"अरे भाई! लौट गये क्या ?"

"नहीं" कहकर हरलाल फिर वापस हुए।

ब्रह्मा०—अभी तो तुमने पांच सौ दिये। और क्या दोगे ?

हर०—तुम्हारे उस विलको ला देनेपर और पांच सौ दूंगा।

ब्रह्मा०—रुपये तो काफी हैं—लोभ छोड़ते नहीं बनता।

हर०—तो तुम राजी हो ?

ब्रह्मा०—राजी न होंगे तो क्या होंगे। लेकिन अदला-बदली कैसे करूँगा ? देख लेंगे तो।

हर०—देख कैसे लेंगे ? मैं तुम्हारे सामने विल देखो बदलता हूँ, पकड़ो तो भला !

हरलालको और विद्या आती हो या न आती हो, हस्तकौशलमें वह कुछ शिक्षा पा चुका है। उन्होंने एक विलको जेबमें रखा और दूसरे विलपर दस्तखत करने वाला करने लगे। इसी बीच जेबका कागज हाथमें आ गया और हाथका कागज जेबमें कब चला गया, इस सफ़ाईको ब्रह्मानन्द देख न सके। ब्रह्मानन्द उनकी हाथकी सफाईकी तारीफ करने लगे। हरलालने कहा,—"यह सफाई तुम्हें सिखा दूँगा।" यह कहकर हरलाल उन्हें हाथ-सफाई कराने लगे !

घण्टे-डेढ़ घण्टेमें ब्रह्मानन्दको कौशल आ गया। तब हीरालालने कहा,—"अब मैं जाता हूँ। सन्ध्याके बाद बाकी रुपये लेकर आऊँगा।" यह कहकर हरलाल चले गये।

हरलालके जानेपर ब्रह्मानन्द मनमें बहुत डरे। उन्होंने सोचा कि जिस कार्यके लिये वह तैयार हुए हैं; वह पुलिस कानूनमें बड़ा

भारी अपराध है। क्या जाने बादमें उन्हें इसके लिये जेलखानेकी कैद भुगतनी पड़े। और यदि बदली करते समय कोई उन्हें पकड़ ले? तो वह ऐसा काम करनेके लिये क्यों उतारू हुए हैं? न करनेपर हाथमें आये एक हजार रुपये लौटाने पड़ेंगे। यह भी न बन पड़ेगा प्राण रहते।

हाय रे, फलाहार! कितने गरीब ब्राह्मणोंका दिल तुमने दुखाया है। इधर संक्रामक ज्वर, प्लीहासे पेट भरा हुआ है, उसपर फलाहार सामने है। ऐसे समय फूलकी थालीमें केलेके पत्तेपर सजायी हुई पूरियाँ, सन्देश, बूँदीके लड्डू, सीताभोग आदिका ताजा सुन्दर रूप देखकर दरिद्र ब्राह्मण क्या करे? त्याग करेगा या भोजन करेगा? मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ कि ब्राह्मण यदि हजार वर्षतक भी ऐसी सुसज्जित थालीके सामने बैठकर तर्क-वितर्क करें तो इस प्रश्नका हल न निकाल सकेंगे। हल न कर सकनेपर वह चीजें बिना बोले पेटमें उतार जायेंगे।

ब्रह्मानन्द घोष महाशयका भी यही हुआ। हरलालके इन रुपयोंको हजम करना मुश्किल है—जेलखानेका डर है, लेकिन त्याग करते भी तो नहीं बनता। लोभ भी भारी, लेकिन बदहजमीका भी डर है। ब्रह्मानन्द कुछ निश्चय कर न सके! निश्चय न कर सकनेपर दरिद्र ब्राह्मणकी तरह पेट भरनेकी तरफ ही उनका ध्यान रहा।

—:※:—

तीसरा परिच्छेद

सन्ध्याके बाद ब्रह्मानन्द बिल लिखकर वापस आ गये। देखा कि हरलाल आकर बैठे हैं। हरलालने पूछा,—"क्या हुआ?"

ब्रह्मानन्द जरा काव्यप्रिय हैं। उन्होंने बड़े कष्टसे हँसकर कहा—"

"मनमें आया चाँद धरूँ, हाथ बढ़ा दिया,
काँटोंपर पड़ा हाथ, दुःख-दर्द ले लिया।"

हर०—नहीं कर सके क्या?

ब्रह्मा०—भाई! मन न जाने कैसा करने लगा?

हर०—नहीं कर सके?

ब्रह्मा०—नहीं भाई! यह लो अपना जाली बिल—और रहे तुम्हारे रुपये।

यह कहकर ब्रह्मानन्दने वह नकली बिल और सन्दूकसे पाँच सौ रुपये निकालकर दे दिये। क्रोध और विरक्तिसे हरलालकी आँखें लाल हो गईं, उनके होठ काँपने लगे। उन्होंने कहा,—"मूर्ख, अकर्मण्य! स्त्रियोंका काम तुमसे हो न सका? मैं तो चला। लेकिन याद रखना, अगर इस बातकी गन्ध भी तुम्हारे मुँहसे निकली, तो तुम्हारी जानकी खैरियत नहीं।"

ब्रह्मानन्दने कहा,—"इसकी फिक्र न करो। मुझसे किसी तरह भी यह बात प्रगट हो नहीं सकती।"

वहाँसे उठकर ब्रह्मानन्दके रसोईघरमें गये। हरलाल घरके

लड़के हैं, सभी जगह आ-जा सकते हैं। रसोईघरमें ब्रह्मानन्दकी भतीजी रोहिणी रसोई बना रही थी।

इस रोहिणीसे हमारा कुछ विशेष सम्बन्ध है। अतः उसके रूप-गुणका वर्णन कुछ करना चाहिये। लेकिन आजकल रूपके वर्णनका बाजार बहुत गर्म है—और गुण वर्णन—हालके कानूनके अनुसार अपना छोड़कर दूसरेका कर नहीं सकते। फिर भी, इतना तो करना ही पड़ेगा कि रोहिणीका यौवन बरसाती नदीकी तरह पड़ा हुआ है—रूप उछला पड़ता है, शरतके चन्द्र अपनी सोलहों कलाओंसे परिपूर्ण हैं। वह बाल-विधवा है—किन्तु विधवाके अनुकूल न होनेके उसमें अनेक अवगुण हैं। दोष यही कि वह काले पाड़की धोती पहनती है, हाथमें चूड़ी पहनती और शायद पान भी खाती है। इधर रसोई बनानेमें वह द्रौपदी, तरकारी, पापड़, पकवान, बड़ा, पकौड़ी, कढ़ी बनानेमें सिद्धहस्त है। उसमें बनाव शृङ्गारमें, गहना पहननेमें, फूल सजानेमें और सूची कलामें तो वह अतुलनीय है ही। चोटी गूँथने, लड़कियोंको सजानेमें वही महल्लेकी एकमात्र भरोसा है। उसका कोई अपना सहायक नहीं है, इससे ब्रह्मानन्दके घरमें रहती है।

सुन्दरी रोहिणी ठन-ठन करती हुई दालकी बटलोहीमें कलछी डोला रही थी, दूर एक बिल्ली खानेकी ताकमें बैठी थी, पशुजाति कामिनीजाति बिजली जैसे कटाक्षसे काँप उठती है या नहीं, यह जाननेके लिये रोहिणी उसके ऊपर रह-रहकर विषपूर्ण मधुर टुकड़े प्रदान कर रही थी, बिल्ली भी उस कटाक्षको तली हुई मछलीके

आहारका निमंत्रण समझकर जब धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी, ऐसे ही समय हरलाल बाबू अपने जूतोंको मचमचाते हुए भीतर आये। बिल्ली तली हुई मछलीका लोभ छोड़कर भाग खड़ी हुई। रोहिणी हाथसे कलछी छोड़कर, हाथ धोकर, घूँघट निकालकर खड़ी हो गई। नाखूनसे नाखून कुरेदते हुए उसने कहा—"बड़े चाचा! कब आये?"

हरलालने जवाब दिया—"कल आया हूँ। तुमसे कुछ बातें करनी हैं।"

रोहिणी सिहर उठी। बोली,—"आज यहीं खायेंगे क्या? पतला चावल भातके लिये चढ़ा दूँ?"

हर०—हाँ हाँ, चढ़ाओ, लेकिन वह बात नहीं है। क्या तुम्हें अपनी उस एक दिनकी बात याद है?

रोहिणी चुपचाप जमीन देखती रही। हरलालने कहा—"उसी दिन, जिस दिन तुम गङ्गा-स्नान करके लौट रही थी और अपने दलसे बिछुड़कर छूट गई थी, याद आता है?

रोहिणी—(बाएँ हाथकी चार उँगलियाँ दाहिनी हथेली पर रखकर) हाँ, याद है।

हर०—जिस दिन तुम भूलकर मन्दिर चली गई थी, याद है?

रोहिणी—याद है।

हर०—वहाँ तुम्हें रात हो गई और वहाँ से निकलने ही बदमाशोंने तुम्हारा पीछा किया—याद है?

रोहिणी—है।

हर०—उस दिन तुम्हें किसने बचाया था ?

रोहिणी—तुमने। तुम घोड़ेपर चढ़े हुए उसी मन्दिर की राह कहीं जा रहे थे।

हर०—सालीके घर।

रो०—तुमने मुझे देखकर मेरी रक्षा की थी—मुझे पालकी और कहार बुलाकर घर भेजवा दिया था। खूब मजेमें याद है। वह उपकार मैं कभी भूल नहीं सकती।

हर०—आज उस उपकारका बदला चुका सकती हो। उसपर भी मुझे जन्मभरके लिये खरीद ले सकती हो—बोलो, करोगी ?

रो०—क्या कहिये-मैं प्राण देकर भी आपका उपकार करूँगी।

हर०—करो या न करो। लेकिन यह बात किसीके सामने प्रकट न करना।

रो०—प्राण रहते नहीं।

हर०—कसम खाओ।

रोहिणीने कसम खाई।

तब हरलालने कृष्णकान्तके असल और नकल विलकी बात उसे समझा दी। अन्तमें उन्होंने कहा—"वही असली विल चोरी करके जाली विल उसके बदले रख आना होगा। हमलोगोंके घर तो तुम बराबर जा सकती हो। तुम बुद्धिमान हो, सहज ही यह काम कर सकोगी। मेरे लिये क्या इतना करोगी ?"

रोहिणी काँप उठी। बोली—"चोरी ? मुझे मारकर टुकड़े-टुकड़े कर देनेपर भी यह न कर सकूँगी।"

हर०—नारी जाति ऐसी ही असार होती हैं। बात ही बात होती है उनकी ! मैं समझता हूं कि इस जन्ममें तुम मेरे उपकारका बदला चुका नहीं सकतीं।

रो०—और जो कहिये, सब करूँगी। मरनेको कहें, तो मर सकती हूँ। लेकिन यह विश्वासघाती काम नहीं कर सकती।

हरलाल किसी तरह भी जब रोहिणीको राजी न कर सके तो एक हजारके नोट हाथपर रखने लगे। बोले—"यह एक हजार रुपये इनाम अगला लो। यह काम तुम्हें करना ही पड़ेगा।"

रोहिणीने नोट नहीं लिये। बोली—"रुपये की लालच नहीं करती। मालिककी सारी सम्पत्ति देनेपर भी कर न सकूँगी। करना होता तो केवल आपकी बातपर ही कर देती।"

हरलालने लम्बी साँस खींची; फिर बोले—"मनमें सोचा था, रोहिणी ! तुम मेरी हितैषी हो। लेकिन पराया कभी अपना हुआ है ? देखो, आज यदि मेरी स्त्री होती, तो मैं तुम्हारी खुशामद करने कभी न आता। वही मेरा यह काम कर देती।"

इस बार रोहिणी थोड़ा हँसी। हरलालने पूछा—"क्यों हँसी, क्यों ?"

रो०—आपकी स्त्रीके नामसे वह विधवा-विवाहकी बात याद आ गई। आप क्या विधवा-विवाह करेंगे ?

हर०—इच्छा तो है—लेकिन मनके मुताबिक विधवा मिलेगी कहाँ ?

रो०—विधवा हो या सधवा हो—यानी विधवा हो या कुमारी

हो—एक विवाह कर संसारी बननेसे ही काम निकल सकता है। हमलोग आत्मीय-स्वजन, सभी तो ऐसा होनेसे खुश होंगे।

हर०—देखो, रोहिणी विधवा-विवाह शास्त्रसम्मत है।

रो०—यह तो आज सभी लोग कहते हैं।

हर०—देखो, तुम भी तो एक शादी कर सकती हो—क्यों न करोगी ?

रोहिणीने थोड़ा और घूँघट निकालकर मुँह घुमा लिया।

हरलाल कहने लगे—"तुम लोगोंके साथ हमारा केवल गाँवका रिश्ता है—सम्बन्ध तो है नहीं।"

अब रोहिणी और लम्बा घूँघट निकालकर बैठ गई और लगी बटलोहीमें कलछी घुमाने। यह देखकर खिन्न होकर हरलाल वापस जाने लगे।

हरलाल जब दरवाजेके पास पहुँचे तो रोहिणीने कहा—"न हो कागज रखे जाइये, देखूँ क्या कर सकती हूँ।"

हरलालने प्रसन्न होकर जाली बिल और रुपये रोहिणीके पास रख दिये। देखकर रोहिणी बोली—"नोट नहीं ; सिर्फ बिल रखिये।"

हरलाल केवल जाली बिल छोड़कर नोट लेकर चले गये।

—:※:—

चौथा परिच्छेद

उसी दिन रात आठ बजेके समय कृष्णकान्त राय अपने

सोनेके कमरेमें पलङ्गपर बैठे हुए, मसनदके सहारे उठँगकर सटका लगाये हुए तमाखू पी रहे थे—और संसारकी एकमात्र ओषधि और नशेमें श्रेष्ठ-अहिफेन उर्फ अफीमके मीठे नशेमें पिनक ले रहे थे। पिनकमें क्या देखते हैं—मानो उनका वह विल विक्रीका कबाला हो गया है। मानो हरलालने उनकी सारी सम्पत्ति तीन रुपये तेरह आने के एक टुकड़ेमें खरीद ली है। फिर किसीने जैसे कह दिया हो कि,—"नहीं, यह दानपत्र नहीं—तमस्सुक है। इसके बाद ही पिनकमें देखने लगे-ब्रह्माके बेटा विष्णुने आकर वृषभारूढ़ महादेवसे एक गोली अफीम कर्ज लेकर यही दलील लिख देकर विश्वब्रह्माण्डको बन्धक रख दिया है—महादेव गाँजेके फाँकमें फोरक्लोज करना भूल गये हैं। ऐसे ही समय रोहिणीने धीरे-धीरे कमरेमें प्रवेश कर कहा,—"दादाजी! क्यों सो रहे हैं?"

कृष्णकान्तने बिना सिर उठाये कहा,—"कौन नन्दी? ठाकुरसे फोरक्लोज करनेके लिये कहा।"

रोहिणी समझ गयी कि कृष्णकान्त इस समय अफीमके पिनकमें हैं। हँसकर बोली,—दादाजी! नन्दी कौन है?"

कृष्णकान्तने बिना सिर उठाये ही कहा,—"हूँ, ठीक कहा। वृन्दावनमें ग्वालेके यहाँका मक्खन खाया था। आजतक उसका पैसा नहीं दिया है।"

रोहिणी खिल-खिलाकर हँस पड़ी। तब कृष्णकान्त चिहुँक उठे। माथा उठाकर देखकर बोले,—"कौन है, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी?"

रोहिणीने जवाब दिया—"मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुण्य।"

कृष्ण०—अश्लेषा, मघा, पुनर्वसु।

रो०—दादाजी! मैं क्या तुम्हारे पास ज्योतिष सीखनेके लिये आयी हूँ?

कृष्ण०—यही तो! तब कैसे आई? अफीम तो नहीं चाहिये?

रोहि०—वह क्या जीवन रहते आप दे सकते हैं, उसके लिए नहीं आई हूँ। मुझे तो काकाने भेजा है, इसीलिये आई हूँ।

कृष्ण०—यह-यह; आखिर अफीमके लिये ही न?

रोहि०—नहीं, दादाजी। नहीं। तुम्हारी कसम अफीम नहीं चाहिये। काकाने कहलाया है कि आज जो विल लिखा-पढ़ी हुई है, उसमें तुम्हारे दस्तखत नहीं हुए।

कृष्ण०—अरे, मुझे तो मजेमें याद है कि मैंने दस्तखत किये हैं।

रोहि०—नहीं, काकाका कहना है कि उन्हें याद आता है कि तुमने उसपर दस्तखत नहीं किया है। ठीक तो है, सन्देह रखनेकी जरूरत क्या? तुम एकबार उसे देख लो।

कृष्ण०—ठीक; तो जरा लालटेन उठाओ तो?

यह कहकर कृष्णकान्तने उठकर तकियाके नीचेसे तालीका गुच्छा निकाला। रोहिणीने अपने हाथमें रोशनी ली। पहले तो कृष्णकान्तने एक बक्स खोला और उसमेंसे एक बड़ी विचित्र ताली निकाली। उससे चेस्टड्रावरकी एक दराज खोली और खोजकर वह विल निकाला। इसके बाद बक्ससे चश्मा निकालकर नाकपर चढ़ानेकी कोशिश करने लगे। लेकिन चश्मा निकालते-निकालते

दो-एक बार उन्हें अफीमकी पिनक आ ही गयी—अतः उसमें भी कुछ समय बीता। अन्तमें किसी तरह चश्मा जब दिखाने लगा, तो देखकर कृष्णकान्तने हँसकर कहा—"रोहिणी! मैं क्या बूढ़ा होकर पागल हो गया हूँ? यह देखो मेरा दस्तखत है।"

रोहिणीने कहा,—"राम-राम बूढ़े क्यों हो जायेंगे? हमलोगोंके नाती-नतिनी होनेसे ही क्या। ठीक है, तो मैं जाकर दादासे बता दूँ।"

यह कहकर रोहिणी कृष्णकान्तके सोनेवाले कमरेसे बाहर हुई।

× × × ×

सन्नाटी रात थी; कृष्णकान्त सो रहे थे। अकस्मात् उनकी नींद खुल गयी। जागते ही उन्होंने देखा कि उनके कमरेमें रोशनी नहीं है। प्रायः बराबर रातको कृष्णकान्तके कमरेमें रातभर दिया जला करता है। लेकिन आज उन्होंने देखा कि रोशनी बुझ गयी है। नींद टूटते समय उन्हें ऐसा भी भान हुआ, जैसे कोई दराजमें चाबी घुमा रहा हो। यह भी अनुभव हुआ कि घरमें कोई चल फिर रहा है। मनुष्य उनकी पलङ्गके पास सिरहाने तक आया—उनकी तकियाको उसने छुआ भी। कृष्णकान्त अफीमके नशेमें विभोर हैं—सोते हैं, या जागते हैं—मजेमें समझ न सके। घरमें रोशनी नहीं है-इसे भी वह मजेमें समझ न सके; कभी अर्द्धनिद्रित, कभी अर्द्ध सचेतन—जागते रहनेपर भी आँखें खुलती नहीं। एक बार दैवात् आँख खुली सही, लेकिन उन्होंने अँधेरा देखा, तो समझे कि हरिघोषके मुकदमेमें उन्होंने जाली दलील पेश की और

इसीलिये उन्हें जेल हो गयी है। जेलखानेमें घोर अन्धकार है। कुछ देर के बाद एकाएक ताला खुलनेका शब्द उनके कानोंतक पहुँचा—यह क्या, जेलके फाटकका ताला बन्द हुआ? एकाएक वह चिहुँक उठे। कृष्णकान्तने हुक्केका सटका हाथमें उठानेके लिये हाथ बढ़ाया, पाया नहीं—अभ्यासके अनुसार उनके मुँहसे निकल गया,—'हरी!"

कृष्णकान्त अन्तःपुर में सोते न थे—बाहरी घरमें ही सोते थे। दोनों तरफके बीच में एक कमरा था—उसीमें सोते थे। वहाँ हरी नामका एक खानसामा पहरेदार की तरह हमेशा सोता था। और कोई नहीं। कृष्णकान्त ने उसे ही बुलाया—"हरी!"

कृष्णकान्त दो ही एक बार हरीको बुलाकर फिर अफीमकी पिनकमें आ गये। असली विल उसी समय उनके घरसे गायब हो गया। जाली विल उसके स्थानपर रख दिया गया।

—:※:—

पाँचवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन सवेरे रोहिणी फिर वहीं बैठी है, फिर वहीं हरलाल झाँक-ताक लगा रहा है। सौभाग्यसे ब्रह्मानन्द घरमें न थे—नहीं तो न जाने क्या मनमें सोचते।

हरलाल धीरे-धीरे रोहिणीके पास गये—रोहिणीने उधर मजेमें देखा भी नहीं। हरलालने कहा,—"जरा इधर देखो—हण्डी फटेगी तो नहीं?"

रोहिणीने देखकर हँस दिया। हरलालने पूछा,—"क्या किया ?
रोहिणीने चुराया हुआ विल लाकर हरलालको देखनेको दिया। हरलालने पढ़कर देखा—असली विल ही था। उस समय दुष्टके चेहरे पर हँसी न थी। विल हाथमें लेकर उसने पूछा—"कैसे पा सकी, इसे ?"

रोहिणीने एक कहानी शुरू की। सच्ची बात कुछ न बताई। एक मिथ्या उपन्यासकी रचना करने लगी। कहते-कहते उसने हरलालके हाथसे विल लेकर वह नाट्य करती हुई बताने लगी, कि किस तरह एक कागज कलम-दानमें पड़ा हुआ था। विल चोरीकी कहानी समाप्त कर रोहिणी हठात् विल लिये हुए चली गयी। जब वह लौटी, तो उसके हाथमें विल न था। यह देखकर हरलालने पूछा,—"विल कहाँ रख आयी ?"

रो०—यत्नपूर्वक रख दिया है।

हर०—उसे यत्नसे रखनेसे क्या होगा, मैं तो अभी जा रहा हूँ।

रो०—अभी जाओगे ? इतनी जल्दी काहेकी है ?

हर०—यहाँ रहनेका अवसर नहीं है।

रो०—तो जाओ।

हर०—विल ?

रो०—मेरे पास रहने दो।

हर०—यह क्या ? विल मुझे न दोगी ?

रो०—वह जैसे तुम्हारे पास रहा, वैसे मेरे पास रहा।

हर०—यदि मुझे विल न दोगी, तो उसे चुराया क्यों था ?

रो०—आपके लिये ही ऐसा किया है। जब आप विधवा-विवाह करेंगे तो मैं यह विल आपकी स्त्रीको दे दूँगी। आप इसे नाहक फाड़कर फेंक देंगे।

हरलाल समझ गये। बोले,—"यह हो नहीं सकता। रोहिणी! जितने रुपये चाहो ले लो।"

रो०—एक लाख रुपये देनेपर भी नहीं। जो देनेका वचन दे चुके हो, वही चाहती हूँ।

हर०—यह न होगा। मैं जाल करूँ, चोरी करूँ, अपने हकके लिये करूँगा। तुमने किसके हकके लिए चोरी की है!

रोहिणीका मुंह सूख गया। वह नीचा सिर किये रह गयी। हरलाल कहने लगे,—"मैं चाहे कोई भी हूँ। जिसने चोरी की है, उसे कभी गृहिणी बना नहीं सकता।"

रोहिणी सहसा उठकर खड़ी हो गयी। घूँघट हटाकर और हरलालकी आँखोंसे आँखें मिलाकर उसने कहा,—मैं चोर हूँ! और तुम साधु हो! किसने मुझे चोरी करनेके लिये कहा था? किसने मुझे इतना बड़ा लोभ दिखाया? सरला स्त्रीको देखकर किसने ठगपन किया! जिस शठतासे बढ़कर दूसरी शठता नहीं, जिस झूठसे बढ़कर दूसरा झूठ नहीं, नीच बर्बर भी जिस बातको जबान पर ला नहीं सकता, तुमने कृष्णकान्त रायके पुत्र होकर वही किया। हाय! हाय! मैं तुम्हारे अयोग्य हूँ! ऐसी कोई हतभागिनी न होगी, जो तुम जैसे शठ और नीचको ग्रहण करे। तुम आज यदि औरत

होते तो जिस चीजसे घर झाड़ती हूँ, उससे खबर लेती। तुम पुरुष हो, बस यही समझते हुए यहाँसे चले जाओ।"

हरलालने भी समझा—उपयुक्त दण्ड मिला। धीरे-धीरे वहाँसे विदा हुआ। जानेके समय मुस्कुराता जाता था। रोहिणीने भी समझा—उपयुक्त हुआ है—दोनों तरफसे। वह जूँड़ा खोंसके रसोईमें लग गयी। क्रोधमें उसकी वेणी खुल गई थी। उसकी आँखोंमें आँसू आ रहे थे।

—:*:—

छठा परिच्छेद

तुम वसन्तकी कोयल हो! दिल खोलकर गाओ, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है; किन्तु तुमसे मेरी विशेष प्रार्थना है, समय समझकर गाना। समय, कुसमय, हर समयका गाना अच्छा नहीं। देखो, मैंने बड़ी खोजकर कलम-दावात इत्यादिका दर्शन पाया और भी अधिक खोज-खाजकर मनको पाया; कृष्णकान्तके विलकी कहानी लिखने बैठा, ऐसे समय आकाशसे तुमने स्वर भरा—"कुहू! कुहू! कुहू!" तुम बड़ी सुकण्ठ हो, इसे मैं स्वीकार करता हूँ; किन्तु सुरीला होनेसे ही किसीको गानेका अधिकार नहीं है। जो हो, मेरे बाल पक चुके हैं, कलम चला रहा हूँ, ऐसे समय तुम्हारे गानेसे बहुत हानि नहीं होती। लेकिन देखो, नये बाबू लोग जब रुपयेकी ज्वालासे व्यतिव्यस्त हो, जमा-खर्च मिलानेमें अपना माथा खपा रहे हैं, तब उस आफिसकी टूटी दीवारपरसे जो कहीं

तुमने आवाज कस दी-"कुहू" बस, तो फिर बाबूका जमा-खर्च
मिल नहीं सकता। जब विरह-सन्तप्ता सुन्दरी प्रायः समूचे दिनके
बाद अर्थात् रात नौ बजे कुछ खानेके लिये बैठती है और जैसे ही
खीरका कटोरा सामने खींचती है, वैसे ही तुमने स्वर भरा—
"कुहू"—सुन्दरीकी खीर वैसे ही रह गई—शायद अनमनी होकर
उन्होंने उसमें नमक मिलाकर खाया। जो हो, तुम्हारे कुहूमें कुछ
जादू है, नहीं तो जब तुम बकुलवृक्ष परसे गा रही थी-और विधवा
रोहिणी बगलमें कलसी दबाकर पानी लाने जा रही थी—तब—
लेकिन पहले पानी लानेके लिये जानेका परिचय तो करा दूँ!

हाँ, बात यह है। ब्रह्मानन्द घोष दुखिया हैं—नौकर मजदूर
भी कहाँसे पावेंगे। यह सुविधा है या कुविधा, यह नहीं बता सकता।
सुविधा हो या कुविधा जिसके घर मजदूरनी नहीं है, उसके घर
ठगी, झूठ, रोना-धोना और गन्दगी यह चार वस्तुएँ न मिलेंगी।
मजदूरनी नामकी देवी इन चारों चीजोंकी सृष्टिकर्त्री है। उसपर
जिनके घर अनेक मजदूरनियाँ हैं, उनके घर रोज कुरुक्षेत्र मचा
रहता है—नित्य रावणवध होता है। कोई मजदूरनी भीमरूपिणी
सदैव सम्मार्जिनी गदा हाथमें लिए घूम रही है, कोई उसकी
प्रतिद्वन्द्वी राजा दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, कर्ण जैसे वीरोंको धिक्कार
रही है, कोई कुम्भकर्ण रूपिणी है—छ महीनों तक सोती है—नींद
से उठते ही सर्वस्व खा [illegible] है, व सुग्रीव गला पटकाकर कुम्भकर्ण
वधका उद्योग कर रही है इत्यादि।

ब्रह्मानन्दके घर यह सब आपद-विपद न थी। इसलिये पानी

भरना, वर्तन माँजना सब रोहिणीके ही कपालपर था। सन्ध्याको सारा काम समाप्त कर रोहिणी पानी भरने चलती है। जिस दिनकी घटनाका वर्णन किया है, उसके दूसरे दिन ठीक समयपर रोहिणी कलसी लेकर जल भरने जा रही थी। बाबू लोगोंका एक बहुत बड़ा तालाब है। उसका नाम वारुणी है—उसका जल बहुत मीठा है। रोहिणी वहीं जल लाने जाती है। आज भी जा रही थी। रोहिणी अकेले जल लाने जाती है। दल बटोरकर हलकी औरतोंके साथ हलकी हँसी हँसती हुई, हलकी कलसीमें हलका जल लानेका रोहिणीको अभ्यास नहीं है। कृष्णकी कलसी भारी है, चालचलन भी भारी है। फिर भी, रोहिणी विधवा है। लेकिन विधवाकी तरह रहती नहीं। होठोंपर पानकी घड़ी, हाथोंमें कड़ा, फीतापाढ़की धोती और कन्धोंके ऊपर सुन्दर गठनवाली, कालभुजङ्गिनी जैसे कुंडली मारे हुई चंचल मनोहर वेणी। पीतलकी कलसी छातीपर चलनेके कारण हिलनेसे धीरे-धीरे कलसी नाच रही है जैसे लहरोंपर हँसी लहरा लेती है, उसी तरह धीरे-धीरे कलसी नाच रही है। दोनों चरण धीरे-धीरे जमीनपर इस तरह गिर रहे थे जैसे वृक्षसे गिरनेवाला फूल गिरता है। इस तरल रसकी भरी कलसी तालपर नाच रही थी। झूमती-झामती पाल लगे हुए जहाजकी तरह धीरे-धीरे हिलती-डोलती रोहिणी सुन्दरी सरोवरकी राहको आलोकित करती हुई चली जा रही थी। ऐसे ही समय वकुल वृक्षपर बैठकर वसन्ती कोयलने पुकारा।

"कुहू! कुहू! कुहू!" रोहिणीने ठहरकर चारो तरफ देखा।

मैं शपथ खाकर कह सकता हूँ कि रोहिणीका वह अर्द्ध विक्षिप्त स्पन्दित विलोल कटाक्ष यदि डालपर बैठी हुई कोयल देख पाती तो तुरत वह क्षुद्र पक्षी नयन-शरसे विद्ध हो उलटता-पलटता चक्कर खाता हुआ आ गिरता। किन्तु पक्षीके भाग्यमें यह न बदा था। कार्यकारणकी अनन्त श्रेणी परम्परासे वह बँधी हुई न थी अथवा पक्षीका पूर्वजन्मका कमाया हुआ उतना पुण्य न था। मूर्ख पक्षीने फिर पुकारा—'कुहू! कुहू! कुहू!"

"दूर हो, कलमुँहे!" कहकर रोहिणी चली गयी। लेकिन कोयल भूल न सकी। हमारा दृढ़ विश्वास है कि कोयलने असमय पुकारा था। गरीब विधवा युवती अकेली पानी भरने जा रही थी। ऐसे समय पुकारना ठीक नहीं हुआ। कारण कोयलकी पुकार सुनकर कितनी ही बातें याद आ जाती हैं, जैसे कुछ खो दिया है मानो उस खो जानेसे यौवन असार हो गया मानो वह अब फिर प्राप्त होनेका नहीं। कहीं जैसे रत्न खो दिया है—जैसे कोई रोनेके लिये बुलाता है। मानो यह जीवन वृथा गया। सुखकी मात्रा पूरी न हुई! जैसे इस अनन्त संसारका सौन्दर्य कुछ भी भोगा न गया हो।

फिर कुहू, कुहू, कुहू! रोहिणीने देखा, सुनील अनन्त गगन निःशब्द-साथ ही कुहुककी ध्वनिसे ध्वनित हो उठा है। देखा आमके पेड़पर बैठे हुए नये फूल चमकता हुआ सोने जैसा रंग हर पत्तोंके श्याम रंगके साथ मिला हुआ, शीतल सुगन्धसे परिपूर्ण केवल मधुमक्खी या भौंरेके गुनगुनाहट शब्दसे ध्वनित, साथ ही

उस कुहुकका बँधा हुआ स्वर। देखा—सरोवरतटपर गोविन्दलालका वगीचा उसमें फूल खिले हुए हैं, गुच्छोंमें, लता-जतामें, शाखा प्रशाखामें, पत्तों-पत्तोंमें जहाँ-तहाँ फूल खिले हुए हैं। कोई सफेद कोई लाल, कोई पीला, कोई नीला, कोई छोटा, कोई बड़ा—कहीं मधुमक्खियाँ तो कहीं भौंरे, उस कुहुकसे वायुकी उन स्वरलहरियोंके साथ मधुर सुगन्ध आ रही है। और उसी कुंजवनकी छायाके नीचे गोविन्दलाल स्वयं खड़े हैं। उनके छते-काले कुंचित केश उनके चम्पा जैसे रङ्गवाले कन्धोंपर छितराये हुए पड़े हैं—फूले हुए वृक्षसे भी अधिक सुन्दर उस उन्नत देहके ऊपर एक फूली हुई लताकी शाखा पड़ी हुई हिल रही है—कैसा स्वर मिला है। यह भी उसी पंचम कुहुक स्वरसे बँधा हुआ है। कोयलने फिर एक कोयल वृक्षके ऊपरसे गाया,—"कू-कू"। उस समय रोहिणी सरो-वरकी सीढ़ियोंसे उतर रही थी। रोहिणी सीढ़ीसे उतरकर कलसी जलमें डुबाकर रोनेके लिये वहीं बैठ गयी।

क्या रोनेके लिये बैठी, मैं नहीं जानता। स्त्रियोंके मनकी बात मैं कैसे बता सकता हूँ? लेकिन मुझे सन्देह है कि शायद इसी दुष्ट कोयलने रोहिणीको रुलाया है।

—:❀:—

सातवाँ परिच्छेद

वारुणी पुष्करिणीकी बात उठाकर मैं बड़े झंझटमें पड़ गया। मैं उसका वर्णन पूरा कर नहीं पाता हूँ। पुष्करिणी खूब बड़ी है,

नीले शीशेपर घासका चारों तरफ फ्रेम जड़ा हुआ है। उस घासके फ्रेमके ऊपर एक और बागका फ्रेम है—पुष्करिणीके चारो तरफ बाबू लोगोंका बगीचा है—उद्यानके वृक्षोंका और चहारदीवारीका अन्त नहीं है। वह फ्रेम विविध रङ्गमय—लाल, काला, सब्ज, गुलाबी, सादा, जर्द, तरह-तरहके फूलों द्वारा मीना किया हुआ है। डूबते हुए सूर्य्यकी रोशनीमें बीच-बीचके बैठकखाना और मकान जड़े हुए हीरेकी तरह चमक रहे हैं। और माथेके उपर आकाश वह भी मानो उसी बागके फ्रेमसे सम्बद्ध है—वह भी एक नीला आईना है। वह नीला आकाश, बगीचाका वह नीला फ्रेम और वह घासका फ्रेम, फूल, फल, वृक्ष, मकान, सब उसी नीले जलके दर्पणमें प्रतिबिम्बित हो रहे थे। बीच-बीचमें वही कोकिलकी पुकार! यह सब तो समझा जा सकता है, किन्तु वह आकाश, वह तालाब, और उस कोयलके गानके साथ रोहिणीके मनका क्या सम्बन्ध है, यही मैं समझ नहीं पाता हूँ। इसीलिये कहता हूँ कि इस तालाबके वर्णनसे मैं बड़े झंझटमें पड़ गया।

मैं भी झंझटमें पड़ा और गोविन्दलाल भी बड़े झंझटमें पड़े। गोविन्दलाल उस फूली हुई लताकी आड़से देख रहे थे कि रोहिणी सीढ़ीसे उतरकर अकेली बैठकर रो रही है। गोविन्दलालने मनमें समझा कि पड़ोसकी किसी स्त्रीसे झगड़ा होनेके कारण रोहिणी बैठकर रो रही है। किन्तु गोविन्दलालके सिद्धान्तपर निर्भर नहीं रहा जा सकता। रोहिणी रो रही थी।

नहीं बता सकता कि रोहिणी क्या सोच रही थी। लेकिन

जान पड़ता है, सोचती थी कि किस अपराधसे मेरे भाग्यमें यह बालवैधव्य बदा था? मैंने दूसरोंकी अपेक्षा ऐसा कौनसा भारी अपराध किया है, कि इस पृथ्वीका कोई सुख भोग न सकी? किस पापके कारण मुझे यह यौवन रहते हुए दुखी लड़की की तरह इस जीवनको बिताना पड़ रहा है? जो लोग इस जीवनके सारे सुखोंसे सुखी हैं—मान लो, यह गोविन्दलालकी स्त्री है—किस पुण्यफलसे उनके भाग्यमें यह सुख है और मेरे भाग्यमें शून्य है? हटाओ—सुख दूसरेका देखकर मैं कातर नहीं हूँ—लेकिन मेरी सारी राहें बन्द क्यों हैं? मैं इस कष्टमय जीवनको रखकर क्या करूँगी?

तो, हमने तो कह दिया रोहिणी अच्छी स्त्री नहीं है। देखो इसीमें कितनी बड़ी दुतिहिंसा है। रोहिणीके अनेक दोष हैं—उसका रोना देखकर क्या रुलाई आती है? नहीं आती? किन्तु इतना विचार अच्छा नहीं—दूसरोंकी रुलाई देखकर रोना ही अच्छा है। देवता लोगोंके बादल सूखे खेत देखकर वृष्टि करनेसे रुक नहीं सकते।

तो, तुमलोग भी रोहिणीके लिये एकबार आह भरो। देखो, बेचारी अभी भी घाटपर बैठी रो रही है। शून्य कलसी जलपर हवाकी गति पाकर नाच रही है।

अन्तमें सूर्य अस्त हुए। धीरे-धीरे सरोवर के नीले जलपर काली छाया पड़ी। अन्तमें अन्धेरा हो आया। पक्षी उड़-उड़कर पेड़की डालियोंपर आश्रय लेने लगे। गौवें अपने-अपने घरकी तरफ

चली गयीं। ऐसे समय चन्द्रोदय हुआ—अन्धकारपर हलकी रोशनी फैली। अभी भी रोहिणी घाटपर बैठकर रो रही है—उसकी कलसी उस समय भी जलपर तैर रही थी। तब गोविन्द-लालने भी बागसे घरकी तरफ चले जानेके समय देखा, उस समय भी रोहिणी घाटपर बैठी थी।

इतनी देरतक अबला अकेली बैठी रो रही है, यह देखकर उन्हें दुःख हुआ। तब उन्होंने सोचा कि यह स्त्री सच्चरित्रा हो, चाहे दुश्चरित्रा, यह जगत्पिता द्वारा प्रेरित एक संसार पतंग है—मैं उन्हीं द्वारा भेजा हुआ एक संसार पतङ्ग हूँ, अतः यह मेरी भगिनी स्वरूप है। यदि इसका दुःख दूर कर सकूँ—तो क्यों न करूँ?

गोविन्दलाल धीरे-धीरे सीढ़ी उतरकर रोहिणीके पास जाकर उसकी बगलमें चम्पनिर्मित मूर्तिकी तरह चम्पवर्ण चन्द्रकिरणमें जा खड़े हुए। रोहिणी देखकर चिहुँक गयी।

गोविन्दलालने पूछा,—"रोहिणी! तुम इतनी देरतक अकेली बैठकर रो क्यों रही हो?"

रोहिणी उठकर खड़ी हो गयी, लेकिन चुप रही।

गोविन्दलालने फिर पूछा,—"तुम्हें क्या दुःख है। क्या मुझे न बताओगी? शायद मैं कोई उपकार कर सकूँ।"

जो रोहिणी हरलालके सामने वाचालकी तरह बातें कर रही थी—गोविन्दलालके सामने वही रोहिणी एक शब्द बोल न सकी। कुछ न बोली—गढ़ी हुई पुतलीकी तरह तालाबकी सीढ़ीकी शोभा

बढ़ाने लगी। गोविन्दलालने उस स्वच्छ सरोवरके जलमें उस 'भास्करकीर्त्तिकल्प' मूर्त्तिकी छाया देखी, पूर्णचन्द्रकी छाया देखी और फूले हुए सुनहरी पेड़ोंकी छाया देखी। सब कुछ सुन्दर है—केवल निर्दयता ही कुरूप है। सृष्टि करुणामयी है—मनुष्य निर्मम है। गोविन्दलालने प्रकृतिके स्पष्ट अक्षरोंको पढ़ा। उन्होंने रोहिणीसे फिर कहा—तुम्हें यदि किसी तरहका कष्ट हो, तो आज या कल मुझसे कहना। यदि स्वयं न कह सकती हो, तो हमलोगोंके घरकी स्त्रियोंसे कहलाना।

अब रोहिणी बोली। उसने कहा,—"एक दिन कहूँगी। आज नहीं। एक दिन तुम्हें मेरी बात सुननी होगी।"

गोविन्दलालने स्वीकार कर घरकी राह ली। रोहिणीने जलमें उतरकर कलसेको पकड़, उसमें जल भरा—तब कलसीने बक-बक गल-गल शब्द कर बहुत आपत्ति की। मैं जानता हूँ कि सूनी कलसीमें जल भरनेपर, कलसी, युक्तकलसी या मनुष्य कलसी इसी तरहकी आपत्ति किया करती हैं। बादमें खाली कलसी जलसे भर जानेपर रोहिणीने घाटकी सीढ़ियाँ चढ़कर अपने गीले वस्त्र निचोड़े और उससे अपनी देह ढँककर धीरे-धीरे घरकी तरफ चली। उस समय चलत् छलत् ढबाक् झिमिक ठिमिकि ठिन्! बोलती हुई कलसीमें और कलसीके जलसे और रोहिणीकी दंडोंसे कथोपकथन होने लगा। रोहिणीका मन भी उसी कथोपकथनमें मिल गया—

रोहिणीके मनने कहा—विल चोरी करनेका काम!

जल बोला—छलात् ।

रोहिणीका मन—काम अच्छा नहीं हुआ ।

घड़ेने कहा—ठिन् ठिना-ना ! ना !

रोहिणीका मन—अब उपाय ?

कलसी—ठनक् टनक् टन—उपाय मेरे साथ रस्सी बाँधकर ।

आठवाँ परिच्छेद

रोहिणी आज जल्दी-जल्दी रसोई बनाकर, ब्रह्मानन्दको भोजन करा, स्वयं अनाहार रहकर सोनेके बहाने अपने घरके दरवाजे बन्द कर लेट रही । सचमुच सोनेके लिये नहीं, चिन्ताके कारण ।

तुम दार्शनिक और वैज्ञानिक लोग अपना अभिमत थोड़ी देरके लिये परित्याग कर मेरी एक मोटी बात सुन लो । सुमति नामकी देवकन्या और कुमति नामकी एक राक्षसी दोनों हमेशा मनुष्यके हृदयमें रहती हैं—साथ ही सदा आपसमें लड़ा करती हैं । जैसे दो बाघिनें मरी हुई गौके लिये आपसमें लड़ती हैं, जैसे स्यारिनें मृत देहके लिये विवाद करती हैं, यह दोनों जीवित मनुष्यको पाकर वैसा ही आचरण करती हैं । आज सोनेवाले कमरेमें रोहिणीको पाकर दोनोंका वैसा ही घोर विवाद आरम्भ हुआ ।

सुमति कहती थी,—"ऐसे आदमीका भी भला कहीं सर्वनाश किया जाता है ?"

कुमति—विल तो हरलालको दिया नहीं, सर्वनाश कैसे किया ?

सुमति—कृष्णकान्तका विल कृष्णकान्तको लौटा दो।

कुमति—वाह! कृष्णकान्त जब मुझसे पूछेंगे, "यह विल तुमने कहाँ पाया, और मेरे दराजमें दूसरा एक जाली विल कहाँसे आया," तो मैं क्या कहूँगी? कैसी मजेकी वात है! काकाको और मुझे दोनोंको जेल जानेके लिये कहती हो?

सुमति—तो क्यों नहीं सारी वातें गोविन्दलालके सामने कह-कर, रोकर उनके पैरपर गिरती? वह दयालु हैं, अवश्य हमारी रक्षा करेंगे।

कुमति—यह वात हुई। लेकिन गोविन्दलालको तो सारी वातें खोलके कृष्णकान्तके सामने वतानी पड़ेंगी, नहीं तो विलकी वदली कैसे होगी। कृष्णकान्त यदि थानेमें दे दें, तो गोविन्दलाल हमें कैसे वचा सकते हैं? वल्कि एक दूसरा परामर्श है। अभी चुपचाप वैठो—पहले कृष्णकान्त मरें—इसके वाद तुम्हारे परामर्शके अनुसार गोविन्दलालके पास जाकर रोते हुए कैंतोंपर गिर पड़ूँगी। तव उन्हें विल भी दूँगी।

सुमति—उन्हें देना व्यर्थ होगा। जो विल कृष्णकान्तके घरमें पाया जायगा, वही सच्चा समझकर ग्रहण किया जा सकेगा। गोविंदलाल जो विल निकालेंगे, उसपर जाली होनेका अपवाद आ सकेगा।

कुमति—फिर चुपचाप वैठ—जो होना था, सो हो गया।

अतः सुमति चुप रह गयी। उसकी पराजय हो गयी। तव दोनों आपसमें संधि कर सखीरूपसे एक कार्यमें प्रवृत्त हुई। दोनोंने

उसी वापीतीर विराजित, चन्द्रलोक प्रतिभासित, कम्पकदाम विनिर्मित देवमूर्तिको सामने लाकर, रोहिणीके मानसचक्षुके सामने उपस्थित किया। रोहिणी उसे देखने लगी, देखते-देखते रोने लगी। रोहिणी उस रात सोयी नहीं।

—:※:—

नवाँ परिच्छेद

उसी दिनसे रोज कलसी बगलमें दबाकर रोहिणी वारुणी पुष्करिणीसे जल लानेके लिये जाती है। नित्य कोयल बोलती है—नित्य वही गोविन्दलालको पुष्पोद्यानमें देखती है, नित्य सुमति-कुमतिमें सन्धि-विग्रह दोनों ही घटनाएँ घटती हैं। सुमति-कुमतिका वाद-विवाद मनुष्यके लिये सहनीय है; किन्तु सुमति-कुमतिका सद्भाव बहुत ही भयावह है। उस समय सुमति कुमतिका रूप धारण करती है और कुमति सुमतिका। उस समय सुमति कौन है और कुमति कौन है, पहचाना जा नहीं सकता। लोग सुमति समझकर कुमतिके वशमें हो जाते हैं।

जो हो, कुमति हो चाहे सुमति हो, गोविन्दलालका रूप रोहिणीके हृदयपटपर बड़े गहरे रङ्गमें रङ्गने लगा। अन्धकार चित्रपट—उज्ज्वल चित्र। दिलपर चित्र उज्ज्वलतर होने लगा और चित्रपटपर घना अन्धकार आने लगा। उस समय संसार उसकी आँखोंमें—जाने दो, पुरानी बातें उठानेसे फायदा नहीं। रोहिणी कातर गोविन्दलालके प्रति मन-ही-मन छिपे हुए प्रणयासक्त हो गयी।

मैं नहीं बता सकता कि इतने दिनों बाद उसकी ऐसी दशा क्यों हुई—समझा भी नहीं जा सकता। यही रोहिणी, इन्हीं गोविन्दलालको बचपनसे देखती आती है—कभी उनके प्रति रोहिणीका चित्त आकृष्ट नहीं हुआ। आज एकाएक ऐसा क्यों! नहीं जानता। जो-जो घटनाएँ हुईं, उन्हें बता चुका हूँ। उस पाजी कोयलकी कूक, वह तालाब किनारेका रोना, वह समय, वह स्थान, वह छिन्नपात, उसपर गोविंदलालकी असामयिक करुणा–फिर गोविंदलालके प्रति रोहिणीका निरपराध अन्यायाचरण—इन सब बातोंसे कुछ दिनोंसे गोविंदलाल रोहिणीके मनमें स्थान पा रहे हैं। उससे क्या होगा या न होगा, मैं नहीं जानता, जो घटनाएँ घटी हैं, मैं वैसा ही लिख रहा हूँ।

रोहिणी बड़ी बुद्धिमती है, मजेमें समझ गयी कि विनाशकारी बातें हैं। यदि गोविंदलाल अणुमात्र भी जान पाये तो कभी अपनी छायातक पड़ने न देंगे। शायद ग्रामसे बाहर निकलवा भी दें। किसीके सामने यह बातें कहनेकी भी नहीं हैं। रोहिणीने बड़े यत्नसे मनकी बात मनमें ही छिपा रखी।

लेकिन छिपायी हुई आग जैसे भीतरसे जलाती आती है, रोहिणीके चित्तमें भी वही होने लगा। जीवनका भार वहन करना रोहिणी के लिये कठिन हो गया। मन-ही-मन रोहिणी रात-दिन मृत्यु-कामना करने लगी।

कितने ही लोग मन-ही-मन मृत्यु-कामना करते हैं, इसकी गिनती कौन रख सकता है! हमारा तो ख्याल है कि जो सुखी हैं

और जो दुखी हैं, उनमें अनेक कम मनोवाक्यसे मृत्यु कामना करते हैं। इस पृथ्वीका सुख, सुख नहीं है, सुख भी दुखमय है। किसी भी सुखसे सुख नहीं है, कोई सुख संपूर्ण नहीं—इसीलिये अनेक सुखी जन मृत्यु कामना करते हैं। फिर, दुखी तो अपने दुखमय जीवनके बोझको न सह सकनेके कारण मरना चाहते ही हैं।

मौतको बुलाते तो हैं, लेकिन किसके सामने मौत आती है? बुलानेसे मौत नहीं आती। जो सुखी हैं, जो मरना नहीं चाहते, जो सुंदर हैं, जो युवक हैं, जो आशावान हैं, उनकी आंखोंमें पृथ्वी नन्दनकानन है, मौत उन्हींके सामने आती है। रोहिणी जैसियोंके सामने नहीं आती। इधर मनुष्यकी शक्ति भी ऐसी अल्प है कि मृत्युको वह बुला नहीं सकता। एक छोटी सूईके गड़ानेसे और आधा बूंद दवाके गलेसे उतारनेसे ही यह नश्वर जीवन समाप्त हो सकता है—यह चंचल जलविम्ब काल-सागरमें मिल जा सकता है—किन्तु आंतरिक मृत्यु-कामना करनेपर भी कोई इच्छापूर्वक सूई गड़ा नहीं सकता और न तो आधा बूंद दवा ही गलेसे उतार सकता है। कोई-कोई विरले ऐसा कर सकते हैं, लेकिन रोहिणी उनमें नहीं है—रोहिणी वह कर न सकी।

लेकिन एक वातके लिए रोहिणी कृतसङ्कल्प हुई—जाली विल चलने न पायेगा। इसका एक सहज उपाय था—कृष्णकान्तसे कहना या किसीके द्वारा कहलाना कि आपका विल चोरी चला गया है—दराज खोलकर जो विल है, उसे पढ़के देख लीजिये। रोहिणीने जो चोरी की, इसे भी प्रकट करनेकी जरूरत नहीं—किसीने भी चोरी

की, कृष्णकांतके मनमें एकबार संदेह होते ही वह संदूक खोलकर विल पढ़ेंगे—यह जाली विल देखते ही वह नया विल तैयार करेंगे। गोविंदलालकी सम्पत्तिकी रक्षा भी होगी और कोई जान भी न पायेगा कि किसने विल चोरी किया। किंतु इसमें एक विपद् है—कृष्णकांत जाली विल पढ़ते ही जान जायेगा कि यह भी ब्रह्मानंदके हाथका लिखा हुआ है—उस समय ब्रह्मानंद महाविपदमें पड़ सकते हैं। अतएव दराजमें जो जाली विल है, यह किसी तरह भी प्रकट किया जा नहीं सकता।

अतएव हरलालके लोभमें रोहिणीने जो गोविंदलालका भारी अनिष्ट कर रखा था, उसके प्रतीकारके लिए विशेष चिंतित होकर भी चाचाकी रक्षाके ख्यालसे कुछ भी हो न सका। अतएव उसने अब स्थिर किया कि जिस तरह असली विल चोरी करनेके लिए उसने वहां जाली विल रखा था, उसी तरह जाली विल चोरी कर असली विल वहां रखना होगा।

एकांत रातमें सुंदरी रोहिणी असली विल अपने पास छिपाकर बड़ा साहस बटोरकर अकेली कृष्णकांत रायकी कोठरीमें पहुँचनेके लिए चली। खिड़की-दरवाजे सब बंद थे, सदरफाटक पर दरवान चारपाईपर सोया हुआ अधमुंहे नेत्रसे फंसे हुए गलेसे भीलू रागनीका पितृश्राद्ध कर रहा था, रोहिणी वहीं उपस्थित हुई। दरवानने पूछा—"कौन है?" रोहिणीने जवाब दिया—"सखी"। सखी घरकी एक युवती मजदूरनी है, अतः दरवान फिर कुछ न बोला। रोहिणी निर्विघ्न प्रवेश कर पूर्वपरिचित राहसे कृष्णकांत रायकी

कोठरीके पास पहुँची। मकान सुरक्षित समझकर कृष्णकान्त रायके कमरेका दरवाजा बन्द होता न था। प्रवेशके समय कान लगाकर रोहिणीने सुना कि कृष्णकान्त रायकी नाक विना बाधाके गर्जन कर रही है। तब धीरे-धीरे बिल-चोर बिना शब्द किये कमरेमें घुसा। प्रवेश करते ही पहले उसने दिया बुझा दिया। बादमें पहले-की तरह उसने चावीकी चोरी की तथा पहलेकी तरह ही अन्धेरेमें लक्ष्यकर दराज खोला।

रोहिणी बहुत ही सावधान थी. हाथ बड़ी कोमलतासे चल रहे थे। फिर भी चावी घुमानेमें 'खस' करके एक शब्द हुआ। उसी शब्दमें कृष्णकान्तकी नींद खुल गयी।

कृष्णकान्त ठीक समझ न सके कि कैसा शब्द हुआ। कोई आवाज उन्होंने न की; कान लगाकर सुनने लगे।

रोहिणीने भी सुना कि नासिकागर्जनका शब्द बन्द हो गया है। वह समझ गयी कि कृष्णकान्तकी नींद खुल गयी है। रोहिणी भी निःशब्द स्थिर हो रही।

कृष्णकान्त बोले,—"कौन है ?" किसीने उत्तर न दिया।

वह रोहिणी अब न रही। इस समय रोहिणी शीर्ण, क्लिष्ट और विवश थी, मालूम होता है बहुत डर गयी थी। थोड़ा-थोड़ा श्वासका शब्द हो रहा था। श्वास-प्रश्वासके शब्द कृष्णकान्तके कानमें गये।

कृष्णकान्तने हरिको कई आवाज दी। रोहिणीने सोचा कि

इस समय मैं भाग सकती हूँ, किन्तु ऐसा होनेपर कृष्णकान्तका प्रतीकार नहीं होता। रोहिणीने मन-ही-मन सोचा, "दुष्कर्म-के लिये उस दिन जैसा साहस किया था, आज सत्कर्मके लिये वह क्यों न करूँगी? गिरफ्तार हूँगी, हो जाऊँ।" रोहिणी भागी नहीं।

कृष्णकांतने कई बार हरिको बुलाकर कोई उत्तर न पाया। हरि कहीं और सुखकी खोजमें गया हुआ था—शीघ्र ही आयेगा। तब कृष्णकांतने तकियेके नीचेसे सलाई निकालकर अपने हाथों जलाया। सलाईकी रोशनीमें उन्होंने देखा कि घरमें दराजके पास एक स्त्री खड़ी है।

सलाईसे कृष्णकान्तने दिया वाला। स्त्रीको सम्बोधन करते हुए उन्होंने पूछा,—"तुम कौन हो?"

रोहणी कृष्णकान्तके पास चली गई। फिर बोली,—"मैं रोहिणी हूँ।"

कृष्णकान्त बहुत विस्मित हुए। बोले,—"इतनी रातको अँधेरेमें यहाँ क्या कर रही थी?"

रोहिणीने जवाब दिया,—"चोरी कर रही थी।"

कृष्ण०—मजाक छोड़ो। इस अवस्थामें मैं तुम्हें क्यों पाता हूँ, कहो? तुम चोरी करने आयी हो, इसपर सहसा मुझे विश्वास नहीं होता। किन्तु चोरोंकी अवस्थामें ही मैं तुम्हें देख रहा हूँ।

रोहिणी बोली,—"तब मैं जो करने आई हूँ, उसे आपके सामने ही करती हूँ, देखिये। इसके बाद मेरे लिये जो उचित

व्यवहार हो, सो करेंगे। मैं पकड़ गयी हूँ, भाग न सकूँगी। न भागूँगी।"

यह कहकर रोहिणी दराजके पास लौट आई और उसने खींचकर दराज खोला। उसके अन्दरसे जाली विल बाहर निकालकर असली विल उसकी जगह रख दिया। इसके बाद उसने जाली विल टुकड़े-टुकड़े कर फाड़ फेंका।

"हाँ-हाँ; यह क्या फाड़ती हो? देखें-देखें" कहते हुए कृष्णकान्त चीख पड़े। किन्तु उनके चीखते-चीखते रोहिणीने उस टुकड़े-टुकड़े किये हुए विलको अग्नि-समर्पण कर भस्म कर दिया!

कृष्णकान्तने क्रोधसे आँखें लाल कर कहा,—"यह क्या जलाया?"

रोहिणी—एक नकली विल।

कृष्णकान्त सिहर उठे। बोले,—"विल! विल! मेरा विल कहाँ है?"

रोहिणी—आपका विल दराजके अन्दर है, आप देखिये न?

इस युवतीकी स्थिरता-निश्चिन्तता देखकर कृष्णकान्त विस्मित होने लगे। उन्होंने सोचा,—"कोई देवता छल करनेके लिये तो नहीं आये हैं।"

इसके उपरान्त कृष्णकान्तने दराज खोलकर देखा, उसमें एक विल रखा हुआ था। उन्होंने उसे निकाला, चश्मा बाहर किया; फिर उसे पढ़कर देखा कि वस्तुतः यह उनका असली विल है। आश्चर्यके साथ उन्होंने फिर पूछा—"तो तुमने जलाया क्या?"

गो०—घरकी चीजें मैंने कौनसी खाईं ?

"क्यों? अभी तो मुझसे गाली खा चुके हो ?"

गो०—तुम नहीं जानती, भोमर ! गाली खानेसे यदि बंगाली लड़कोंका पेट भरता तो इस देशके लोग बदहजमीसे परिवारसहित मर गये होते। वह चीज तो बड़ी आसानीसे बंगालियोंके पेटमें हजम हो जाती है। भोमर ! एक बार तुम अपनी नथिया हिलाओ तो, मैं देखूँ।

गोविन्दलालकी स्त्रीका वास्तविक नाम कृष्णमोहिनी, कृष्ण-कामिनी या अनंगमंजरी कुछ ऐसा ही उसके माता-पिताने रखा था, इतिहासकारोंने लिखा नहीं। अनुपयुक्त होनेके कारण वह नाम लुप्त हो गया था। उसका आदरका नाम 'भ्रमर' या 'भोमर' है। सार्थकताके कारण यही नाम प्रचलित हो गया। भोमर साँवली है।

भोमरने नथिया हिलानेमें विशेष आपत्ति दिखाकर अपनी नथिया उतारकर एक खूँटीपर टाँग दी और गोविंदलालकी नाक पकड़ कर उसने हिला दिया। इसके बाद गोविंदलालका चेहरा देखती हुई वह मृदु हँसीसे हँसने लगी,—मन-ही-मन समझती है कि मैंने बड़ा भारी काम किया है। गोविंदलाल भी उसके चेहरेकी तरफ अतृप्त आँखोंसे देखते रह गये। ऐसे ही समय पूर्वगगनमें भगवान सूर्यकी प्रथम रश्मि फूटी। उसकी हलकी रोशनीसे भूमंडल आलो-कित हुआ। वह मधुर ज्योति पूर्वाभिमुखी भ्रमरके मुखमंडलपर आकर पड़ी। उस उज्ज्वल, परिष्कार, कोमल मुखकी श्याम छविपर कोमल प्रभातालोक पड़कर, बड़ी-बड़ी लीलाचंचल आँखोंको चमकाने लगा-

उसका स्निग्ध उज्ज्वल गण्ड प्रभासित हो उठा। हँसी-कटाक्षमें, उस रोहिणीमें गोविंदलाल के आदरमें और प्रभात वायुमें मिल गयी।

इसी समय सोकर उठी हुई मजदूरनियोंके आवासमे हलचलकी आवाज सुनाई दी। इसके बाद ही झाड़ू देने, बरतन माँजने, पानी छिड़कने आई कि सप्-सप्, धप्-धप् झन्-झन्, खन्-खनकी आवाजें होने लगीं। अकस्मात् वह शब्द बंद होकर "अरे राम। क्या होगा! क्या किया? कैसी शैतान है!" बीच-बीचमें हँसी-टिटकारी आदि हलचलके शब्द सुनाई दिये। सुनकर भ्रमर बाहर गयी।

मजदूरनियाँ भ्रमरसे बहुत नहीं डरतीं, इसके कई कारण हैं। एक तो अभी भ्रमर स्वयं लड़की है, दूसरे स्वयं मालकिन नहीं है, मालकिन अभी खास ननद है, उसपर भ्रमर अपनी हँसीमें जितनी पटु हैं, उतनी शासनमें नहीं। भ्रमरको देखकर मजदूरनियाँ और चढ़-बढ़ गयीं।

न० १—अरे सुना, बहूजी?

न० २—ऐसी सर्वनाशी बात किसीने कभी सुनी न होगी।

न० ३—कैसा साहस है! हरामजादी को अभी झाड़ू लगाऊँगी।

न० ४—सिर्फ झाड़ू-बहूजी! कहो तो मैं उसकी नाक काट आऊँ।

न० ५—अरे राम! किसके पेटमें क्या है—कैसे जाने कोई भगवान!

भ्रमरने हँसकर कहा,—"पहले बता तो सही क्या हुआ, फिर

जिसके जो मनमें आवे, करना न! इसके बाद ही फिर वही हलचल होने लगी।

न० १ ने कहा,—सुना नहीं? तमाम मुहल्लेमें शोर हो गया कि—

न० २ ने कहा,—बाघकी माँदमें स्यारनी!

न० ३—हरमजादीको झाड़ू मारकर जहर उतार दूँगी।

न० ४—क्या कहें, बहूजी! बौना होकर चाँद छूती है!

न० ५—भोंगी बिल्ली पहचान नहीं पड़ती। गलेमें फाँसी लगा दो, फाँसी?

भ्रमरने कहा,—"तुम लोगोंके।"

इसपर सब मजदूरनियाँ एक स्वरसे बोल उठीं,—"हमारा क्या कसूर है? हमलोगोंने क्या किया? समझ गयी। दोष चाहे जो करे—आके पड़े हमलोगोंके ऊपर। हमलोगोंको और उपाय नहीं है, क्या करें।

यह बात समाप्त कर उसमें की दो-एक आँखोंपर कपड़ा लगाकर लगी रोने। एकको मरे हुए लड़केकी तरह दुःख याद आया। भ्रमर बहुत चंचल हो उठी—लेकिन अपनी हँसी भी रोक न सकी। बोली,—"तुमलोगोंके गलेमें फाँसी इसीलिये, कि तुम सब अभीतक यह न बता सकी कि क्या हुआ है, बात क्या है?

इसपर चारो तरफसे फिर चार-पाँच गलेकी आवाजें सुनाई पड़ीं। बड़े कष्टसे भ्रमर उस अनंत वक्तृतासे समझ पायी कि मालिककी कोठरीमें रातको चोरी हुई है। किसीने कहा, चोरी नहीं

डकैती, किसीने कहा सेंध, किसीने कहा, नहीं, चार-पाँच चोरोंने आकर लाख रुपयेके कम्पनीके कागज ले लिये।

भ्रमरने कहा—"तब? किस हरामजादीकी बात काट रही थी?"

न० १—रोहिणी ब्राह्मणीकी—और किसकी?

न० २—वही हरामजादी तो सर्वनाशकी जड़ है।

न० ३—वही तो डाकुओंका दल लेकर आयी थी।

न० ४—जैसा कर्म है—वैसा ही फल।

न० ५—अब मरे, जेलमें जाकर।

भ्रमरने पूछा,—"तुमलोगोंने कैसे जाना कि रोहिणी चोरी करनेके लिये आयी थी।

"क्यों? वह पकड़ा गई है। कचहरीकी जेलमें बन्द है।"

भ्रमरने जो कुछ सुना, गोविन्दलालसे जाकर कहा। गोविन्दलालने विचार कर माथा हिलाया।

भ्रमर—माथा क्यों हिलाया?

गो०—मुझे विश्वास नहीं कि रोहिणी चोरी करने आयी थी। तुम्हें विश्वास होता है?

भ्रमरने कहा—"नहीं।"

गो०—बताओ तो सही, क्यों नहीं विश्वास होता?

भ्रमर—बताओ तो, तुम क्यों नहीं विश्वास करते?

गो०—यह बादमें बताऊँगा। पहले तुम बोलो, विश्वास क्यों नहीं होता।

भ्रमर—पहले तुम बताओ।

गोविन्दलाल हँसे। बोले,—"पहले तुम।"

भ्रमर—क्यों पहले बतावें?

गो०—मैं सुनना चाहता हूँ।

भ्रमर—सच बतायें?

गो०—हाँ, सच कहो।

भ्रमर कहनेको उद्यत होकर भी कह न सकी। लज्जासे नीचा मुँह किये खड़ी रही।

गोविन्दलाल समझ गये। पहले ही समझ चुके थे। पहले समझकर भी इतना जबरदस्ती पूछना चाहते थे। रोहिणी निरपराधिनी है, भ्रमरको इसका दृढ़ विश्वास था। अपने अस्तित्वमें जितना विश्वास हो सकता है, भ्रमरको इसकी निर्दोषितामें उतना ही विश्वास था। किंतु उस विश्वासका और कोई कारण न था-केवल गोविंदलाल कहते हैं कि "मेरा विश्वास है कि वह निर्दोषी है।" गोविंदलालका विश्वास ही भ्रमरका विश्वास है। गोविंदलाल इसे समझ गये। वह भ्रमरको पहचानते हैं इसलिये काली होनेपर भी उससे प्रेम करते हैं।

हँसकर गोविंदलालने कहा,—"मैं कहता हूँ, क्यों तुम रोहिणी की तरह हो?"

भ्रमर—क्यों!

गो०-वह तुम्हें काली न बताकर उज्ज्वल श्याम वर्ण बताती है।

भ्रमरने क्रोधसे कुटिल भौंहें कर कहा,—"जाओ।"

गोविंदलालने कहा,—"जायें?" यह कहकर गोविंदलाल उठकर चले।

भ्रमरने कपड़ा पकड़कर कहा,—'कहाँ जाते हो ?'

गो०—अच्छा बताओ, कहाँ जाता हूँ ?

भ्र०—अबकी बता दूँगी।

गो०—बताओ ?

भ्र०—रोहिणीको बचाने।

"ठीक है।" कहकर गोविन्दलालने भ्रमरका मुँह चूम लिया। परदुःखकातरका हृदय परदुःखकातर ही समझता है। इसीलिये गोविन्दलालने भ्रमरका मुँह चूम लिया।

—:०:—

ग्यारहवाँ परिच्छेद

गोविन्दलाल कृष्णकान्त रायकी सदर कचहरीमें जा पहुँचे।

कृष्णकान्त सवेरे ही कचहरीमें आ बैठे थे। गद्दीपर मसनद लगाकर बैठे हुए वह सोनेकी चिन्तनसे बड़ी अम्बरी तमाखूका आनन्द लेते हुए मर्त्यलोकमें स्वर्गका अनुकरण कर रहे थे। एक तरफ राशि-राशि चिट्ठियोंका बँधा बस्ता, खाता-बही, जमाखर्च, रोकड़ बही आदि-आदि, दूसरी तरफ नायब, गुमाश्ता, कारकुन, तहसीलदार, अमीन, प्रजा आदिके लोग थे। सामने शिर नीचा किये हुई घूँघट डाले रोहिणी थी।

गोविन्दलाल बड़े प्यारे भतीजे थे। प्रवेश करते ही उन्होंने पूछा,—"क्या हुआ है, ताऊजी!"

उनका कण्ठ स्वर सुन, घूँघट निकाले हुई रोहिणीने भीतरसे

ही उनपर एक कटाक्ष फेंका। कृष्णकान्तने क्या उत्तर दिया, इस पर गोविन्दलालने विशेष ध्यान न दिया,—सोचा, इस कटाक्षके क्या माने! अंतमें उन्होंने स्थिर किया—इस कातर कटाक्षका अर्थ भिक्षा है।"

कैसी भिक्षा? गोविन्दलालने सोचा कि दुःखकी भिक्षा और क्या? विपदसे उद्धारके लिये। उस तालाबकी सीढ़ीपर खड़े होकर उनसे जो बातें हुईं, वह सब याद आयीं। गोविंदलालने रोहिणीसे कहा था,—"यदि तुम्हें किसी बातकी तकलीफ हो तो आजकल मुझसे कहना।" आज तो रोहिणी पर कष्ट ही है, शायद वही इच्छा रोहिणीने प्रकट की है।

गोविंदलालने मन-ही-मन सोचा,—तुम्हारा मंगल कर सकूँ, यही मेरी इच्छा है। क्योंकि देखता हूँ कि इस संसार में तुम्हारा कोई सहायक नहीं है। लेकिन तुम जैसे आदमीके हाथमें पड़ी हो तुम्हारी रक्षा सहल नहीं है। यह सब सोचते हुए गोविंदलालने फिर कहा,—"क्या हुआ है, तायाजी!"

वृद्ध कृष्णकांतने एकबार आद्योपांत सारी बातें गोविंदलालसे कह सुनायी थीं, लेकिन गोविंदलालने रोहिणीके कटाक्षकी व्याख्यामें भूलकर कुछ नहीं सुना। भतीजेने फिर पूछा,—"क्या हुआ है, तायाजी"! सुनकर वृद्धने मन-ही-मन सोचा है,—ठीक है। लड़का जान पड़ता है, हरामजादीके चंद्रमुखके आगे सब भूल गया! "अतः कृष्णकांतने फिर आद्योपांत सारी बातें गोविंदलालको बतायीं। समाप्त करते हुए बोले—"यह सब उसी 'हरा' (हरलाल)

का पाजीपन है। मालूम होता है, यह हरामजादी उस घूसमें रुपये पाकर जाली विल रखने और असली विल चोरी करने आयी थी। इसके बाद पकड़ जाने पर डरसे जाली विल फाड़कर जला डाला।"

गो०—रोहिणी क्या कहती है ?

कृ०—वह क्या कहेगी ? कहती है, यह बात नहीं।

गोविंदलालने रोहिणीकी तरफ देखकर कहा,—"यह बात नहीं तो क्या बात है, रोहिणी ?"

रोहिणी ने बिना शिर उठाये ही भरे गले से कहा,—"मैं आप लोगों के हाथ में पड़ गई हूं, जो करना हो, सो करिये। मैं और कुछ न कहूँगी।"

कृष्णकांत बोले,—"देखा बदजातपन ?"

गोविंदलालने मन-ही-मन सोचा, इस संसारमें सब लोग बदजात नहीं हैं। इसके अंदर बदजाती छोड़कर और कुछ भी है। वह प्रकट रूपमें बोले,—"इसके लिये क्या हुक्म दिया है, आपने ? इसे क्या थानेमें भेजेंगे ?"

कृष्णकांतने कहा—"मेरे सामने थाना-फौजदारी क्या है ? मैं ही थाना हूँ; मैं ही मजिस्ट्रेट हूँ और मैं ही जज हूं। खासकर इस नीच औरतको जेल भेजवाकर मेरा क्या पौरुष बढ़ेगा ?"

गोविंदलाल ने पूछा—तो क्या करेंगे ?

कृ०—इसका सर मुड़वाकर कालिख पुतवाकर गांवके बाहर निकलवा दूँगा। मेरे इलाके में आने न पायेगी।

गोविन्दलालने फिर रोहिणीकी तरफ मुखातिब होकर कहा, क्या कहती हो, रोहिणी ?"

रोहिणीने कहा,—"क्या हर्ज है ?"

गोविन्दलाल विस्मित हुए। कुछ सोचकर कृष्णकान्तसे बोले,—"मेरी एक प्रार्थना है।"

कृ०—क्या ? -

गो०—इसे एकबार छोड़ दीजिये। मैं जमानत करता हूं—१० बजे फिर हाजिर कर दूँगा।

कृष्णकान्तने सोचा,—"जान पड़ता है, वही बात है। बाबाजी की कुछ गरज है।" फिर प्रकट रूपमें बोले,—"कहाँ जायगी ? क्यों छोड़ूँ ?"

गोविन्दलालने कहा,—"असली बात क्या है, मालूम करना आवश्यक है। इतने लोगों के सामने यह बात प्रकट न करेगी। इसे एकबार अन्दर ले जाकर पूछूँगा।"

कृष्णकान्तने सोचा,—"अपना माथा करोगे। आजकलके लड़के बड़े बेहया हो गये हैं। रहो बेटा ! मैं भी तुम्हारे ऊपर एक चाल चलता हूँ। "यह सोचकर कृष्णकांत बोले,—"ठीक है।" यह कहकर कृष्णकांत एक सिपाही से बोले,—"देख ! इसे संग में लेकर एक मजदूरनी के साथ मझली बहू के पास भेज तो दे। देख भागने न पावे।"

सिपाही रोहिणी को साथ लेकर चला गया गोविंदलाल भी

चले गये। कृष्णकांतने सोचा,—"दुर्गा! दुर्गा! लड़के को ही क्या गाया है?"

—:०:—

बारहवाँ परिच्छेद

गोविंदलालने अंतःपुरमें आकर देखा कि भ्रमर रोहिणी को लेकर चुपचाप बैठी है। अच्छी बातें कहनेकी उसकी इच्छा है, लेकिन इस संबंधमें बातें करनेपर रोहिणीको रुलाई आती है, इसलिये वह रह नहीं सकती है। गोविंदलाल को आया देखकर भ्रमरने जैसे कर्तव्यसे छुट्टी पाया। शीघ्र ही दूर जाकर इशारेसे उसने गोविंदलालको बुलाया। गोविंदलाल भ्रमरके पास गये। भ्रमर ने गोविंदलालसे चुपकेसे पूछा,—"रोहिणी यहाँ क्यों आयी है?"

गोविंदलालने कहा—"मैं एकांतमें उससे पूछूँगा। इसके बाद उसके भाग्यमें जो बदा होगा, वह होगा।"

भ्रमर—क्या पूछोगे?

गो०—उसके मनकी बात। मुझे अकेले छोड़ जानेमें यदि डरती हो, तो, न हो आड़से खड़ी होकर सुनो।

भ्रमर बड़ी अप्रतिभ हुई। लज्जा से नीचा शिर किये, वह अंचल पकड़े भागी। एकदम रसोई घरमें जा पहुँची। पीछेसे रसोईदारिन महराजिनकी चोटी पकड़कर खींचते हुए भ्रमरने कहा,—"महराजिन! रसोई करती हुई एक प्रेम-कहानी कहो न।"

इधर गोविन्दलालने रोहिणी से पूछा,—"क्या यह सब वृत्तान्त मुझसे खोलकर कहोगी ?"

कहनेके लिये रोहिणीका पेट फटा पड़ता था। किन्तु जो जाति जिन्दा चितापर चढ़ सकती है, रोहिणी भी उसी जातिकी-आर्य-कन्या है। बोली—मालिक से सारी बातें तो सुन ही चुके हैं।"

गो:—मालिक का कहना है कि तुम जाली विल रखकर असली विल चोरी करने गई थी। क्या यही बात है ?

रो०—नहीं ऐसा नहीं है।

गो०—तब क्या ?

रो०—कहकर क्या होगा ?

गो०—तुम्हारा भला हो सकता है।

रो०—आप विश्वास करेंगे, तब तो ?

गो०—विश्वास योग्य बात होनेसे क्यों न विश्वास करूँगा ?

रो०—विश्वास योग्य बात नहीं है।

गो०—मेरे सामने क्या विश्वास योग्य है और क्या अविश्वास योग्य है, उसे मैं जानता हूँ, तुम कैसे जानोगी ? मैं कभी-कभी अविश्वासयोग्य बातों पर भी विश्वास करता हूँ।

रोहिणीने मन-ही-मन कहा,—"नहीं तो मैं तुम्हारे लिये मरने क्यों बैठी हूँ ! जो हो, मैं तो मरने बैठी ही हूँ ; लेकिन तुम्हारी एकबार परीक्षा करके देखूँगी।" प्रकट में बोली,—"यह आपकी महिमा है। लेकिन आपसे यह दुःख कहानी कहकर ही क्या करूँगी !"

गो०—शायद मैं तुम्हारा कोई उपकार कर सकूँ।

रो०—क्या उपकार करेंगे ?

गोविन्दलालने सोचा,—"यह वेजोड़ है। जो हो, यह कातर है, इसे सहजमें ही परित्याग न करूँगा। "प्रकट वोले,—"हो सकेगा, तो मालिकसे प्रार्थना करूँगा। वह केवल तुम्हारा त्याग ही कर देंगे।

रो०—और यदि आप अनुरोध न करें, तो वे क्या करेंगे !

गो०—सुन तो चुकी हो।

रो०—मेरा सर मुंड़ा देंगे, कालिख पुतवा देंगे, देशसे वाहर निकलवा देंगे। इसमें भला-वुरा कुछ भी तो देख पाती हूँ। इस कलङ्कके वाद-देशके वाहर निकाल देनेमें ही भलाई है। मुझे निकाल वाहर न करने पर मैं स्वयं ही यह देश त्याग कर चली जाऊँगी। अव इस देशमें मुंह किस तरह दिखाऊँगी ! कालिख पुतवाना कोई वड़ा दण्ड नहीं है-धोनेसे ही धुल जायगा। वाकी रहे यह वाल—'यह कह कर रोहिणीने एकवार अपने तरङ्गक्षुब्ध कृष्णतड़ाग-तुल्य वालोंके प्रति देखकर कहा,—"यह केश—आप कैंचीमें लगाइये, मैं वहूजीक दरी विनवानेके लिये इन सवको अभी काट देती हूँ।"

गोविन्दलाल वहुत दुखी हुए। ठण्डी सांस खींचकर वोले,—समझ गया रोहिणी। कलङ्क ही तुम्हारा दण्ड है। इस दण्डसे न वच जानेपर, दूसरे दण्डके लिये तुम्हें आपत्ति नहीं है।

रोहिणी रो पड़ी। हृदय में गोविन्दलाल को लाखों धन्यवाद देने लगी। वह वोली, "यदि समझ गये हैं, तो मैं आपसे पूछती हूँ, कि क्या इस कलङ्क दण्डसे आप मेरी रक्षा कर सकेंगे ?"

गोविन्दलालने कुछ देर विचार कर कहा—"कह नहीं सकता ; असली बात सुन लेनेपर बता सकता हूँ कि रक्षा कर सकूँगा या नहीं ।"

रोहिणीने कहा,—"क्या पूछना चाहते हैं, पूछिये ।

गो०—तुमने जो जलाया, वह क्या था !

रो०—जाली विल ।

गो०—कहाँ पाया था ?

रो०—मालिकके घरके दराज में ।

गो०—जाली विल वहाँ कैसे आया ?

रो०—मैं ही रख गयी थी । जिस दिन असली विलकी लिखा-पढ़ी हुई, असली विल चोरी कर जाली विल रख गयी थी ।

गो०—क्यों ! तुम्हें क्या प्रयोजन था ?

रो०—हरलालबाबू के अनुरोध से ।

गोविन्दलालने पूछा,—"तब कल रातको फिर क्या करने आई थी ?"

रो०—असली विल रखने और जाली विल लेने ।

गो०—क्यों ! जाली विलमें क्या था ?

रो०—बड़े बाबूके हिस्सेमें बारह आना और आपके हिस्सेमें एक पाई ।

गो०—फिर क्यों विल बदलने आई ? मैंने तो कोई अनुरोध नहीं किया था ?

रोहिणी रोने लगी । बड़े कष्टसे रोना बन्द कर बोली,—नहीं

अनुरोध नहीं किया था; लेकिन जो मैंने इस जन्ममें कभी नहीं पाया और जिसे इस जन्ममें कभी पा भी न सकूँगी—आपने मुझे दिया है।

गो०—वह क्या रोहिणी ?

रो०—इसी वारुणी तालाबके किनारे; याद कीजिये।

गो०—क्या, रोहिणी ?

रो०—क्या ? इस जन्ममें मैं नहीं बता सकती—क्या। और कुछ न कहिये। इस रोग की दवा नहीं है—मेरी मुक्ति नहीं। मुझे जहर मिलता तो खा लेती। लेकिन वह आपके घरमें नहीं है। आप मेरा दूसरा उपकार कर नहीं सकते—लेकिन एक उपकार कर सकते हैं। एक बार छोड़ दीजिये—रो आऊँ। इसके बाद यदि बची रह जाऊँ तो न हो तो माथा मुड़ाकर, कालिख पोतकर देश निकाला कर सकते हैं।

गोविन्दलाल समझ गये। आईनेकी तरह उन्होंने रोहिणीको देख लिया। समझ गये कि जिस मंत्रसे भ्रमर मुग्ध है, वह भुजङ्गी भी उसी मंत्रसे मुग्ध हुई है। उन्हें प्रसन्नता भी न हुई—क्रोध भी न हुआ, समुद्र-जैसा वह हृदय है, उसमें उद्वेलन होकर दयाका उफान उठा। उन्होंने कहा,—'रोहिणी ! मौत ही तुम्हारे लिये अच्छी होगी, लेकिन मरनेकी जरूरत नहीं। सब इस संसार में कामके लिये आये हैं—अपना-अपना काम बिना किये क्यों जायँगे ?

गोविन्दलाल इधर-उधर करने लगे। रोहिणीने कहा—"कहिये न।"

गो०—तुम्हें यह देश त्यागकर चले जाना होगा।

रो०—क्यों ?

गो०—तुम स्वयं ही तो कह रही थी कि इस देशका त्याग करना चाहती हो।

रो०—मैं लज्जावश कह रही थी, लेकिन आप क्यों कहते हैं ?

गो०—हमारी तुम्हारी मुलाकात न हो !

रोहिणीने देखा कि गोविन्दलाल सब समझ गये हैं। मन-ही-मन बड़ी अप्रतिभ हुई। बड़ी सुखी हुई। वह अपने सारे दुःख भूल गयी। फिर उसकी जीनेकी इच्छा हुई। फिर उसको देशमें रहनेकी वासना बलवती हुई। मनुष्य बहुत ही पराधीन है।

रोहिणीने कहा,—"मैं अभी जानेको राजी हूँ, लेकिन कहाँ जाऊँ ?"

गो०—कलकत्ते। वहाँके एक मित्रको मैं पत्र दूँगा। वह तुम्हारे लिये एक मकान खरीद देंगे। तुम्हारे रुपये न लगेंगे।

रो०—मेरे वृद्ध चाचाका क्या होगा ?

गो०—वह तुम्हारे साथ जायेंगे। अन्यथा तुम्हें कलकत्ते जानेको न कहता।

रो०—वहाँ कैसे दिन बिताऊँगी ?

गो०—मेरे मित्र तुम्हारे चाचा को कोई नौकरी दिला देंगे।

रो०—चाचा क्या देश त्यागनेको तैयार होंगे ?

गो०—तुम क्या इस घटनाके बाद उन्हें राजी न कर सकोगी ?

रो०—कर सकूंगी। लेकिन आपके ताया कैसे राजी होंगे? वह मुझे कैसे छोड़ेंगे?

गो०—मैं अनुरोध करूँगा।

रो०—ऐसी दशामें मुझे कलङ्क पर कलङ्क लगेगा। आपपर भी कुछ कलङ्क आयेगा।

गो०—ठीक है, तुम्हारे लिये मालिक के सामने भ्रमर अनुरोध करेगी। तुम अब भ्रमर की खोज करो। उसे यहाँ भेज कर स्वयं इस मकान में ही रहना। बुलानेसे तुम्हें पा सकूं।

रोहिणी सजल नयन गोविन्दलालको देखती हुई भ्रमरकी खोज में चली। इस तरह कलङ्कमें, बन्धनमें, रोहिणी का प्रथम प्रणय-सम्भाषण हुआ।

तेरहवाँ परिच्छेद

भ्रमर किसी तरह भी श्वसुर से अनुरोध करने पर राजी न हुई। बड़ी लज्जा आती है, छिः!

अन्त में गोविन्दलाल स्वयं कृष्णकान्त के पास गये। भोजन के बाद उस समय कृष्णकान्त अर्द्धशयनावस्था में फर्शी का सटका हाथमें लिये हुए पिनक ले रहे थे। इधर उनकी नासिकाके आवाज में गमकके साथ और ताल-मूर्छनादि के सहित विविध राग-रागिणी का अलाप हो रहा था। दूसरी तरफ उनका मन अफ़ीम की कृपा से त्रिभुवनगामी अश्व पर आरूढ़ हो नाना स्थानोंमें घूम

रहा था। बुड्ढे के मन में भी रोहिणी का चन्द्रमुख जान पड़ता है, उदित हो चुका था,—चांद कहां नहीं उदित होता? नहीं तो बुड्ढा अफीमकी झोंकमें इन्द्राणीके कन्धोंमें मुंह क्यों छिपावेगा। कृष्णकान्त देख रहे हैं कि रोहिणी हठात् इन्द्रकी शची होकर महादेवकी गोशालामें सांड़ चोरी करनेके लिये गयी हैं। नन्दीने हाथमें त्रिशूल लिये हुए सांड़को खाना देने जानेके लिये उसे गिरफ्तार कर लिया है। देखते हैं कि रोहिणीके आलुलायित कुन्तल केशोंको पकड़कर खींचा-तानी कर रहे हैं और षड़ानन का मयूर उन बालोंको सर्प समझ कर निगलनेके लिये पहुँच गया है। ऐसे समय पर स्वयं षड़ानन मयूरका दौरात्म्य देखकर महादेवके सामने नालिश करनेके लिये उपस्थित होकर पुकार रहे हैं,—तायाजी?"

कृष्णकान्त विस्मित होकर सोचते हैं कि कार्तिक ने महादेव को किस संबंधसे "ताया" कहकर बुलाया। ऐसे समय कार्तिकने फिर बुलाया,—"तायाजी?" कृष्णकान्तने अतीव विरक्त होकर कार्तिकेयके कान मल देनेके लिये हाथ ऊपर उठाया। तब कृष्णकान्तके हाथका फरशीका सटक छूटकर झनसे पानके डब्बे पर जा गिरा। पानका डब्बा भी झनझनाकर पीकदान पर जा गिरा, तथा सटक, पानदान और पीकदान एक साथ भूतलशायी हुए। इस शब्दसे कृष्णकान्तकी नींद खुल गयी, तो उन्होंने आँखें खोलकर देखा कि वस्तुतः कार्तिकेय उपस्थित हैं। मूर्तिमान स्कंद वीरकी तरह गोविन्दलाल उनके सामने खड़े हैं—पुकार रहे हैं,—

"ताऊजी !" कृष्णकान्त हड़बड़ा कर उठ बैठे और पूछा—"क्या है, बेटा ! गोविन्दलाल ?" बूढ़ा गोविन्दलालको बहुत प्यार करता है।

गोविन्दलाल कुछ सकुचा गये। बोले—"आप सोइये—मैं बहुत जरूरी कामसे नहीं आया था।"

यह कहकर गोविन्दलालने पीकदान उठाकर सीधा किया, पानके डब्बेको उठाकर यथास्थान रखा और सटक उठाकर कृष्णकांतके हाथमें पकड़ा दिया। लेकिन कृष्णकान्त भी बड़ा कठिन बुड्ढा है—सहजमें ही भूलनेवाला नहीं। मन-ही-मन कहने लगे "कुछ नहीं, छोकड़ा फिर उसी चंद्रमुखीकी बात लेकर आया है। "प्रकट रूपमें बोले,—"नहीं मेरी नींद हो गयी—अब न सोऊंगा। गोविन्दलाल बड़े विपद्‌में पड़े। रोहिणीकी बात उन्हें कृष्णकान्तसे कहनेमें सवेरे लज्जा मालूम नहीं हुई थी—इस समय कुछ लज्जा मालूम होने लगी—बात कहते-कहते भी नहीं कह सके। रोहिणीसे तालाब किनारे जो बातें हुई थीं, क्या इसी कारण लज्जा है ?

बुड्ढा तमाशा देखने लगा। गोविन्दलाल कोई बात उठाते नहीं हैं, यह देखकर उन्होंने स्वयं जमींदारीकी बात उठायी—जमींदारीके बाद सांसारिक बातें, सांसारिक बातोंके बाद गुरुजनोंकी बातें, लेकिन रोहिणीकी बात उन्होंने नहीं उठायी। गोविन्दलाल किसी तरह भी रोहिणीकी बात उठा न सके। कृष्णकान्त मन-ही-मन खूब हँसे। बुड्ढा बड़ा दुष्ट है।

अन्तमें गोविन्दलाल लौट रहे थे, तब कृष्णकान्तने उनसे

प्रियतम भतीजेको फिर बुलाकर कहा,—"सवेरे जिस हरामजादी की तुमने जमानत की थी, उसने कुछ बताया ?"

अब गोविन्दलालने शह पाकर रोहिणीने जो-जो कहा था, सब संक्षेपमें कह डाला। वारुणी तालावकी बातें छिपा गये। सुनकर कृष्णकान्तने कहा,—"अब उसके लिये तुम्हारी क्या करने की इच्छा है ?"

गोविन्दलालने लज्जित होकर कहा,—"आपकी जो इच्छा होगी वही मेरी इच्छा भी है।"

कृष्णकान्तने मन-ही-मन हँसते हुए, मुँह पर कुछ भी हँसीका लक्षण प्रकट न कर कहा, "मैं उसकी बातोंका विश्वास नहीं करता। उसका माथा मुड़वाकर, कालिख पुतवाकर देश के बाहर निकलवा दो—क्या कहते हो ?"

गोविन्दलाल चुप रह गये। तब दुष्ट बुड्ढे ने कहा, "और यदि तुम समझो कि उसका दोष नहीं है, तो छोड़ दो।"

गोविन्दलालने साँस छोड़कर बुड्ढेके हाथ से छुट्टी पाई।

—:❀:—

चौदहवाँ परिच्छेद

रोहिणी गोविन्दलालकी आज्ञाके अनुसार चाचाके साथ विदेश जानेके लिए बन्दोवस्त करने आई। चाचासे इस बारेमें कुछ न कह कर वह बीच कमरेमें बैठकर लगी रोने।

"यह हरिद्राग्राम छोड़कर मुझसे जाते न बनेगा—बिना देखे

मर जाऊँगी। मेरे कलकत्ते चले जाने पर गोविन्दलालको तो देख न सकूँगी। मैं न जाऊँगी। यह हरिद्राग्राम ही मेरा स्वर्ग है, यहाँ गोविन्दलालका मंदिर है! यह हरिद्राग्राम ही मेरा स्मशान है, यहीं मैं जलकर मरूगी। स्मशानमें मरने न पाऊँ, ऐसा भाग्य भी है! मैं यदि हरिद्राग्राम छोड़कर न जाऊँ तो मेरा कोई क्या करेगा? कृष्णकान्त मेरा माथा मुड़वाकर, कालिख पुतवाकर निकलवा देंगे? मैं फिर लौट आऊँगी। गोविन्दलाल नाराज होंगे। होंगे तो हों,—फिर भी उन्हें देखूँगी। मेरी आँखें तो न निकलवा लेंगे। मैं न जाऊँगी। कलकत्ते न जाऊँगी—कहीं न जाऊँगी। जाऊँगी तो यमराजके घर जाऊँगी, और कहीं नहीं।"

यह निश्चय कर कलमुँही रोहिणी उठकर, दरवाजा खोलकर फिर—पतङ्गवद् वह्निमुखं विविक्षुः"—उसी गोविन्दलालके पास चली। मन-ही-मन कहती हुई चली,—"हे जगदीश्वर, हे दीनानाथ, हे दुखीजनके एकमात्र सहाय! मैं बड़ी दुखिनी हूँ, बड़े दुखमें पड़ी हूँ, मेरी रक्षा करो। मेरे हृदयकी इस असह्य प्रेमाग्निको बुझा दो, अब अधिक मत जलाओ। मैं जिसे देखने जा रही हूँ उसे जितनी बार देखूँगी उतनी बार मेरी असह्य यन्त्रणा अनन्त सुख है; मैं विधवा हूँ—मेरा धर्म गया—सुख गया—प्राण गया! क्या प्रभु? क्या रखूँ भगवान? हे देवता! हे दुर्गा! हे काली! हे जगन्नाथ! मुझे सुमति दो, मेरे मनको स्थिर करो। मैं यह यन्त्रणा अधिक सह नहीं पाती हूँ।"

फिर भी वह स्फीत, हत, अपरिमित, प्रेमपरिपूर्ण हृदय फिर

न हुआ ! कभी सोचती है जहर खालूँ; कभी सोचती है गोविन्द-लालका पैर पड़ कर दिल खोलकर सारी बातें कहूँ, कभी सोचती है—भाग जाऊँ, फिर सोचा वारुणी तालावमें डूब मरूँ, इसके बाद सोचा जलांजलि देकर गोविन्दलालको छीनकर विदेश भाग जाऊँ। इस तरह रोती हुई रोहिणी फिर गोविन्दलाल के पास पहुँची।

गोविन्दलालने पूछा, क्यों कलकत्ते जाना पक्का है न ?

रो०—नहीं।

गो०—यह क्या ? अभी तो मेरे सामने स्वीकार किया था ?

रो०—जा न सकूँगी।

गो०—मैं क्या कहूँ, जबर्दस्ती करने में मेरा अधिकार नहीं, लेकिन जानेसे अच्छा होता।

रो०—क्या अच्छा होता ?

गोविन्दलाल सिर नीचा कर रह गये। स्पष्ट बात कहनेवाले वह कौन होते हैं ?

रोहिणी आँखोंके आँसू छिपाकर पोंछती-पोंछती घर वापस चली गई। गोविन्दलाल बहुत दुखी होकर विचारमें पड़ गये। ऐसे ही समय भ्रमर नाचती-कूदती वहाँ पहुँची, बोली—"क्या सोच रहे हो ?"

रो०—तुम बताओ तो सही।

भ्रमर—मेरा काला रूप।

गो०—धत्।

भ्रमर घोररूपमें क्रोधित होकर बोली—"वह क्या ! मेरा

ख्याल नहीं कर रहे थे ? मुझे छोड़कर संसारमें तुम दूसरेका ख्याल कर सकते हो ?

गो०—क्यों नहीं ? मैं दूसरेका ख्याल कर रहा हूँ।

इसपर भ्रमरने गोविन्दलालके गलेमें लपटकर और मुंह चूमकर प्रेमसे विह्वल होकर मीठी-मीठी मुस्कुराहटसे मुस्कुराते हुए कहा—दूसरे किसका ध्यान कर रहे, बताओ न ?

गो०—क्या होगा तुम्हें बताकर।

भ्र०—बताओ न ?

गो०—तुम नाराज होगी।

भ्र०—हूँगी तो हूँगी, तुम बताओ।

गो०—जाओ-जाओ, देखो तो सबका खाना-पीना हो गया ?

भ्र०—अभी देखूँगी, बताओ वह कौन है ?

गो०—रोहिणीका ख्याल कर रहा था।

भ्र०—क्यों रोहिणीका ख्याल कर रहे थे ?

गो०—यह मैं क्या जानूँ ?

भ्र०—जानते हो, बताओ न ?

गो०—आदमी-आदमीका ख्याल नहीं करता ?

भ्र०—नहीं। जो जिसे प्रेम करता है, वही उसका ख्याल करता है, मैं तुम्हें प्यार करती हूं—तुम मुझे प्यार करते हो। मैं तुम्हें याद करती हूं, तुम मेरा ख्याल करते हो।

गो०—तो मैं रोहिणीको प्यार करता हूं।

भ्रमर—झूठी बात है। तुम मुझे प्यार करते हो—और

किसीको तुम्हें प्यार नहीं करना चाहिये—क्यों रोहिणीको याद कर रहे थे, बताओ न ?

गो०—विधवाको मछली खानी चाहिये ?

भ्र०—नहीं।

गो०—विधवाको मछली न खानी चाहिये, फिर भी, तारिणी-की माँ मछली क्यों खाती है ?

भ्रमर—वह मुँहजली है, जो न करना चाहिये, वही करती है।

गो०—मैं भी मुँहजला हूँ, जो न करना चाहिये वही करता हूँ। रोहिणीसे प्रेम करता हूँ।

तड़ाकसे गोविन्दलालके गाल पर भ्रमरने थप्पड़ लगाया। क्रोधसे लाल होकर वह बोली—"मैं श्रीमती भोमर दासी हूँ—मेरे सामने झूठी बात ?"

गोविन्दलालने हार मान ली। भ्रमरके कन्धे पर हाथ रखकर उसके प्रफुल्ल नीलकमल सदृश माधुर्यमय चेहरेको अपने करपल्लवों से पकड़कर मधुर साथ ही गम्भीर कण्ठसे गोविन्दलालने कहा—"झूठी ही बात है, भोमर! मैं रोहिणीसे प्रेम नहीं करता। लेकिन रोहिणी मुझसे प्रेम करती है।"

तीरकी तरह गोविन्दलालके हाथसे अपना मुँह छुड़ाकर भ्रमर दूर जा खड़ी हुई। हाँफते-हाँफते कहने लगी—"अभागी कलमुँही बन्दरी मर जाय! मर जाय! मर जाय! मर जाय!"

गोविन्दलाल ने कहा—"अभीसे इतनी गाली क्यों ? तुम्हा

सात राज्यके धन एक मालिकको तो अभी उसने छीन नहीं लिया है।"

भ्रमरने कुछ अप्रतिभ होकर कहा,—"देर ही क्या है—इतनी शक्ति है, हरामजादीने तुम्हारे सामने कहा कैसे?"

गो०—ठीक कहती हो भोमर! यह कहना उसे उचित न था। यही मैं सोच रहा था। मैंने उसे यहाँसे जाकर कलकत्ते रहनेके लिए कहा था, खर्च तक देनेके लिये तैयार था।

भ्र०—तब?

गो०—तब भी वह राजी न हुई।

भ्र०—ठीक, मैं उसे एक परामर्श दे सकती हूँ।

गो०—हाँ-हाँ, लेकिन वह परामर्श मैं सुनूँगा।

भ्र०—सुनो।

यह कहकर भ्रमरने, "क्षीरि, क्षीरि!" कहकर एक मजदूरनी-को बुलाया।

इसपर क्षीरोदा—उर्फ क्षीरोदमणि-उर्फ क्षीराब्धितनया—उर्फ केवल क्षीरी आकर खड़ी हो गयी। मोटी-मोटी, नाटी-नाटी, पैरोंमें फूलका कड़ा पहने—हँसीसे भरा हुआ चेहरा! भ्रमरने कहा,—"क्षीरि! रोहिणी कलमुँहीके पास अभी जा सकेगी?

क्षीरीने कहा—"क्यों न जा सकूँगी? क्या कहना होगा?"

भ्रमरने कहा—"मेरा नाम लेकर कह आ कि उन्होंने कहा है कि तू मर।"

"यही? जाऊँ!" कहकर क्षीरदा उर्फ क्षीरी—[illegible] हुई

चली। जानेके समय भ्रमरने कह दिया—"वह जो जवाब दे, मुझसे आकर कहियो।"

"अच्छा" कहकर क्षीरोदा चली गयी। थोड़ी ही देर बाद उसने आकर कहा—"कह आई।"

भ्रमर—क्या कहा उसने?

क्षीरी—उसने कहा कि कह दो, उपाय बता दें।

भ्रमर—तो फिर जा। कह आ कि जिस वारुणी तालाबमें—शामके वक्त गलेमें कलसी बाँधकर—समझ गयी!

क्षीरी—अच्छा।

क्षीरी फिर गयी और फिर वापस आयी। भ्रमरने पूछा—"वारुणी तालाबकी बात कह दी?

क्षीरी—कह दिया।

भ्रमर—क्या बोली?

क्षीरी—उसने कहा कि 'अच्छा'।

गोविन्दलालने कहा—"छिः भ्रमर!"

भ्रमरने कहा—डरो मत। वह मरेगी नहीं। जो तुम्हें देखकर मर चुकी है—वह क्या मर सकती है?

—:०※०:—

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

दैनिक सारे कार्योंको समाप्त कर रोजके नियमानुसार गोविन्द-लाल शामके समय तालाबके किनारेवाले बागमें टहलने लगे।

गोविन्दलालको बगीचेमें टहलना बड़ा सुखकर जान पड़ता है। हरेक वृक्षके नीचे दो-चार बार टहलते हैं। लेकिन इस समय हम हरेक वृक्षकी बात न कहेंगे। वारुणीके किनारे बगीचेमें एक ऊँची पत्थरकी वेदी बनी है। वेदिकाके ऊपर पत्थरकी खोदी हुई एक स्त्री-मूर्ति है। स्त्री-मूर्ति अर्द्धनग्न नीची निगाहें किये हुए है। एक घड़ेसे अपने चरणोंपर जैसे पानी डाल रही हो। वेदिका पर उसके चारों ओर सफेद रङ्गके मिट्टीके गमलोंमें छोटे-छोटे फूलके वृक्ष—जिरानियम, तार्विनायूफेरिया, चन्द्रमल्लिका, गुलाब। नीचे उसी वेदिकाके चारो ओर कामिनी यूथिका, मल्लिका, गन्धराज आदि सुगन्ध वाले देशी फूलकी कतारें हैं जो गन्धसे वायुमण्डल प्रमुदित कर रहे हैं। इसके बाद ही विविध, उज्ज्वल, नील, पीत, रक्त, श्वेत वर्णोंके पत्तोंके वृक्ष लगे हैं। इसी जगह गोविन्दलाल बैठनेमें बड़े सुखी होते हैं। चाँदनी रातमें कभी-कभी भ्रमरको साथ लाकर यह इसी जगह बैठाते थे। भ्रमर उस पत्थरकी अर्द्धनग्न मूर्तिको देखकर उसे कलमुँही कहा करती थी। कभी-कभी अपने अंचलसे अङ्ग ढाँक देती, कभी घरमेंसे उत्तम साड़ी लाकर उसे पहना देती, कभी-कभी उसके हाथके पत्थरके घड़ेको छीननेका प्रयास करती थी।

आज सन्ध्या समय उसी जगह बैठकर गोविन्दलाल शीशेकी तरह चमकनेवाले तालाबके जलको देखने लगे। देखते-देखते उन्होंने देखा कि तालाबकी प्रशस्त सीढ़ियोंपरसे रोहिणी बगलमें घड़ा दबाये उतर रही है। शब्द बिना चल सकता है, लेकिन पानी बिना कैसे

चल सकता है ! आज ऐसे दुःखके दिन भी रोहिणी जल लेने आई है। रोहिणीके जलमें उतरकर नहाने-धोनेकी भी संभावना है—दृष्टिपथपर उनका रहना अकर्त्तव्य समझकर गोविंदलाल वहांसे हट गये।

बहुत देरतक गोविन्दलाल इधर-उधर घूमते रहे। अंतमें उन्होंने सोचा कि इतनी देरमें तो रोहिणी वहांसे हट गई होगी। यह सोचकर गोविंदलाल फिर उसी वेदिकातलमें जलनिषेकनिरता पाषाण सुन्दरीके पैरोंके पास जा बैठे। फिर उसी वारुणीकी शोभा निरखने लगे। उन्होंने देखा कि रोहिणी या कोई स्त्री-पुरुष नहीं है। कोई कहीं न था—किन्तु जलके ऊपर एक कलसी तैर रही थी।

यह किसका घड़ा है ? एकाएक सन्देह हुआ—कोई जल लेने आकर डूब तो नहीं गया ? सिर्फ रोहिणी ही पानी भरने आयी थी—इसी समय एकाएक सवेरेकी बात याद आ गई। याद आया कि भ्रमरने रोहिणीको कहला दिया था कि वारुणी तालाबमें सन्ध्या समय—कलसी गलेमें बाँधकर। यह भी याद आया कि रोहिणीने उत्तरमें कहा था,—"अच्छा।"

गोविन्दलाल तत्क्षण पुष्करिणी घाटपर आये। खड़े होकर चारों तरफ देखने लगे। जल आईनेकी तरह स्वच्छ था। घाटके नीचे जलतलकी भूमि तक दिखाई पड़ रही है। उन्होंने देखा स्वच्छ स्फटिक सदृश हेमप्रतिमा रोहिणी जलके तल सोयी हुई है। जलके नीचेकी अन्धकार भूमिको अपनी विमल प्रतिमासे रोहिणी समुज्ज्वल किये हुई है।

सोलहवाँ परिच्छेद

गोविन्दलालने तुरत जलमें कूदकर रोहिणीको उठाया और सीढ़ीपर लाकर सुला दिया। उन्होंने देखा कि रोहिणीके जीवनमें संदेह है, उसके श्वास-प्रश्वास बन्द थे, वह बेहोश थी।

गोविन्दलालने बगीचेके एक मालीको बुलाया। मालीकी सहायतासे रोहिणीको उठाकर वह बगीचेके प्रमोदगृहमें उसे सुश्रूषाके लिये ले गये। जिन्दी हो या मरी हुई हो, आखिर रोहिणी गोविन्दलालके गृहमें प्रवेश कर गयी। भ्रमरके अतिरिक्त और किसी स्त्रीने उस उद्यानगृहमें प्रवेश न किया था।

वायु और वर्षासे धुले हुए चम्पाके फूलकी तरह वह मृत नारी-शरीर पलङ्ग पर लम्बा पड़ा हुआ दीप-आलोकमें शोभा पा रहा था। लम्बे-काले बाल जलमें भींगे हुए थे—उनसे पानी चू रहा था, जैसे मेघ जल-वृष्टि कर रहे हों। आँखें मुँदी हुई थीं। उन मुँदे हुए पद्मों पर गीले होनेके कारण काली भौंहें बड़ी शोभा दे रही थीं। और वह ललाट स्थिर थे, विस्तारित लज्जामय विहीन, एकदम अव्यक्त भाव लिये हुए—गण्डस्थल अभी भी उज्ज्वल थे। अधरों पर अभी भी मधु खेल रहा था—लजवन्ती लता की पत्ती की तरह। गोविन्दलालकी आँखोंमें आँसू आ गये। वह बोले—"मर गई! भगवानने इतना रूप देकर तुम्हें क्यों भेजा था? और यदि सुन्दरता दी तो सुखी क्यों न बनाया? इस तरह तुम क्यों चल दी?" इस सुन्दरीके आत्मघातके

कारण वही हैं—यह सोचकर उनकी छाती फटी पड़ती थी।

यदि रोहिणीमें जीवन हो तो बचाना चाहिये। डूबे हुएको किस तरह निरापद करना चाहिये यह गोविन्दलाल जानते हैं। पेटका जल बड़ी सरलतासे निकला जा सकता है। दो-चार बार रोहिणीको उठाकर, बैठाकर, अगल-बगल घुमाकर जल निकाल दिया गया। लेकिन अभी सांसें चलने नहीं लगीं। यही सबसे कठिन काम है।

गोविन्दलाल जानते हैं, कि डूबे हुएके दोनों हाथ ऊपर उठाना और नीचे करनेसे फेफड़ोंमें हवा भरती है और उसी समय मुँहसे फूँककर हवा भरना चाहिये। इस तरह हाथ उठानेसे फेफड़े फैलते हैं और मुँहकी हवा उसमें भर जाती है। फिर हाथ नीचा करनेसे वह हवा मुँह-नाकके जरिये निकलती है। इस तरह कृत्रिम श्वास-प्रश्वास चलने लगती है जो आगे चलकर प्राकृतिक श्वास-प्रश्वासमें परिणत हो सकती है। रोहिणीको ऐसा ही करना होगा। दोनों हाथ उठानेके बाद मुँहमें फूँकना पड़ेगा। उसके उस पके अनारकी लालीको लजानेवाले, अमृतसे परिपूर्ण, मदनमदोन्माद हलाहल कलसी सदृश रङ्गीन होंठों पर होंठ रख कर फूँकना पड़ेगा। अरे राम! कौन करेगा?

गोविन्दलालका सहायक एक वही उड़िया माली है। बगीचेके सब माली अबसे पहले ही घर जा चुके थे। उन्होंने मालीसे कहा—"मैं इसके दोनों हाथ ऊपर उठाता हूँ, तू इसके मुँहमें फूँक तो सही!"

मुँह में फूँक ! सर्वनाश ! इन रंगीन अमृत भरे होंठों पर माली के होंठ पड़ेंगे ? बड़ी मुश्किल है रे भाई !

मालीको यदि मालिक शालिग्रामकी बटिया चबानेको कहते, तो शायद वह उनकी बात रखनेके लिये वह भी कर डालता, लेकिन उसे चन्द्रमुखीके रंगीन होंठोंपर होंठ रखना ! मालीको तो पसीना होने लगा। उसने साफ इनकार किया—"मैं न सकिहौं सरकार !"

मालीने ठीक ही कहा। माली उस देवदुर्लभ अधरोंपर यदि एकबार मुँह रख देता और यदि रोहिणी बच जाती—तो जब रोहिणी बगलमें घड़ा दबाकर ओंठ सिकोड़ इस मालीकी तरफ कटाक्ष मारकर चल देती, तो बेचारे मालीकी नौकरी ही न रह जाती। वह अपनी खुरपी-खचिया फेंककर रोहिणीके पीछे दौड़ पड़ता इसमें सन्देह नहीं। शायद वह सुवर्णरेखाके नील जलमें डूब मरता। मालीके मनमें यह सब विचार उठे थे या नहीं, नहीं कहा जा सकता—लेकिन यह सही है कि उसने मुँहमें फूंकनेसे इनकार कर दिया था।

अन्तमें गोविन्दलालने कहा—"तब तू इसके दोनों हाथ उठाओ, मैं फूँकता हूँ। इसके बाद धीरे-धीरे हाथ नीचे करियो।" मालीने यह स्वीकार कर लिया। उसने रोहिणीके दोनों हाथ पकड़कर धीरे-धीरे उठाया—गोविन्दलालने फुल्लरक्त कुसुमकान्ति होंठोंपर अपने फुल्लरक्त कुसुमकान्ति अधर रक्खे—रोहिणीके मुँहमें उन्होंने फूँका।

इसी समय भ्रमर एक लाठी लेकर बिल्ली मारने जा रही थी। बिल्लीको मारनेमें लाठी बिल्लीको न लगकर उसीके सिरमें लगी।

मालीने रोहिणीके दोनों हाथोंको नीचा किया। गोविन्द-लालने फिर फूँक मारा। फिर उसी तरह किया गया। बार-बार यही प्रक्रिया की जाने लगी। दो-तीन घण्टे तक यही किया गया। रोहिणीकी सांस चलने लगी। रोहिणी बच गयी।

—०:❀:०—

सत्रहवाँ परिच्छेद

रोहिणीकी सांस चलने लगी—गोविन्दलालने दवा खिलायी। औषधि बलकारक थी—क्रमशः रोहिणीमें बल-संचार होने लगा। रोहिणीने आँखें खोलकर देखा—सज्जित मनोहर कमरेमें खिड़की-की राहसे मन्द शीतल पवन आ रहा था—एक तरफसे स्फटिकके बने दीवटपर दीपक जल रहा था। दूसरी तरफ हृदयाधारका जीवन प्रदीप जल रहा था। रोहिणी गोविन्दलालके हाथोंसे मिली हुई मृतसंजीवनी सुरा पीकर मरकर भी जीने लगी। पहले निश्वास चली, फिर चैतन्य हुआ, आँखें खुलीं, फिर स्मृति आयी, फिर बोलने लगी। रोहिणीने कहा "मैं तो मर गयी थी, मुझे किसने बचाया?"

गोविन्दलालने कहा—"चाहे जिसने बचाया हो, तुम बच गई हो, यही बड़ी बात है।"

रोहिणी बोली,—"मुझे क्यों बचाया आपने ? आपके साथ मेरी कौन-सी ऐसी शत्रुता है कि आप मुझे मरने भी न देते ?"

गो०—तुम क्यों मरोगी ?

रो०—क्या मरनेका भी मुझे अधिकार नहीं ?

गो०—पाप करनेका अधिकार किसीको नहीं है। आत्महत्या भी पाप ही है।

रो०—मैं पाप-पुण्य नहीं जानती, मुझे किसीने सिखाया भी नहीं। मैं पाप-पुण्य मानती भी नहीं। किस पापसे मुझे यह दण्ड मिला है ? पाप न करनेपर भी यदि यह दुःख है, तो पाप करनेसे ही इसके अधिक क्या होगा ? मैं मरूँगी। इस बार विफल हुई, इसलिये कि तुम्हारी आँखोंके सामने पड़ गई थी—तुमने रक्षा की। अब ऐसा यत्न करूँगी कि तुम्हारी आँखोंके सामने न पड़ूँ।

गोविन्दलाल बड़े दुःखी हुए। बोले,—"तुम क्यों मरोगी ?"

"बहुत दिनोंसे क्षण-क्षण, पल-पल, रात-दिन मरनेसे अच्छा है एक बार ही मरकर छुट्टी पा जाऊँ।"

गो०—ऐसा कौन-सा कष्ट है, तुम्हें ?

रो०—रात-दिनकी भयानक प्यास, हृदय जला जाता है—सामने ही शीतल जल है, किन्तु इस जलमें इस जन्मका स्पर्श भी नहीं कर सकती। कोई आशा भी नहीं।

इसपर गोविन्दलालने कहा,—"इन सब बातोंसे मतलब नहीं—चलो, तुम्हें घर पहुँचा आऊँ।"

रोहिणीने जवाब दिया,—"नहीं, अकेली ही चली जाऊँगी।"

गोविन्दलाल समझ गये कि किस बातकी आपत्ति है। गोविन्दलाल कुछ बोले भी नहीं, फिर चुप ही रह गये। रोहिणी अकेली ही चली गई।

तब उस अकेले कमरेमें गोविन्दलाल जमीनपर लोटकर लगे रोने। मिट्टीमें मुंह छिपाकर आँसुओंकी धारा बहती हुई आँखोंसे पुकारकर कहने लगे,—"हा नाथ! नाथ! इस विपत्तिसे तुम मेरी रक्षा करो! तुम्हारा बल न पाकर मैं किस बलसे इस महाविपदसे रक्षा पाऊँगा। मैं मरूँगा—मेरी भ्रमर भी मर जायगी। प्रभु! इस हृदयमें आओ, विराजो! तुम्हारे रहनेसे हृदयमें बल मिलेगा—तुम्हारे बलसे मैं आत्मविजय करूँगा।

अठारहवाँ परिच्छेद

गोविन्दलालके घर लौट आनेपर भ्रमरने उनसे पूछा,—आज इतनी राततक बगीचेमें क्यों रहे?"

गो०—क्यों पूछती हो? क्या और कभी बगीचेमें नहीं रहा?

भ्रमर—रहे हो, लेकिन आज तुम्हारा मुँह देखकर, तुम्हारे कण्ठकी आवाज सुनकर जान पड़ता है, कुछ हुआ है।

गो०—क्या हुआ है?

भ्र०—क्या हुआ है, यह बिना तुम्हारे बताये कैसे जान सकती हूँ? मैं क्या वहाँ बैठी थी?

गो०—क्यों? क्या इस चेहरेको देखकर भी नहीं बता सकती!

भ्र०—मजाक रहने दो। मुँह देखनेसे कह सकती हूँ कि कोई भारी बात हुई है। मुझे बताओ, मेरा प्राण सुननेके लिये व्याकुल हो रहा है।

यह कहते-कहते भ्रमरकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। गोविन्द-लालने आँखोंके आँसू पोंछते हुए प्यार कर कहा,—फिर किसी दिन बता दूँगा, भ्रमर! आज नहीं।

भ्रमर—आज क्यों नहीं?

गो०—तुम अभी बालिका हो, बालिकाको वह बात सुननेकी जरूरत नहीं।

भ्र०—कल क्या मैं बूढ़ी हो जाऊँगी?

गो०—कल भी न बताऊँगा—दो वर्ष बाद बताऊँगा। अब इस बातको फिर न पूछना, भ्रमर!

भ्रमरने ठंढी साँस ली। बोली—ऐसा ही सही। दो वर्ष बाद ही कहना-मेरी सुननेकी बड़ी इच्छा थी, लेकिन जब तुम न कहोगे तो मैं सुन ही कैसे सकती हूँ? मेरा मन न जाने कैसा कर रहा है!

न जाने कैसा भारी दुःख भ्रमरके हृदयके भीतर अन्धकार फैलाने लगा। जैसे वसन्तका आकाश,—बहुत सुन्दर, नीला, स्वच्छ उज्वल हो—कहीं कुछ न हो—एकाएक उसपर एक बादल आकर चारोंतरफ अन्धेरा फैला दे-भ्रमरको मालूम हुआ कि उसके हृदयके अन्दर इसी तरह एक बादलने आकर चारों तरफसे अन्धेरा फैला दिया दिया है—भ्रमरकी आँखोंमें जल आने लगा। फिर उसने सोचा,—मैं व्यर्थ रो रही हूँ। मैं बड़ी दुष्ट हो गयी हूँ। मेरे पति

नाराज होंगे। अतः भ्रमर रोती हुई बाहर चली गयी और एक घरके कोनेमें बैठकर, पैर फैलाकर विष्णुसहस्रनाम पढ़ने लगी। माथा कपाल क्या पढ़ा, यह तो नहीं बता सकता, लेकिन छातीपर-का वह काला मेघ किसी तरह भी न हटा।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

गोविन्दलाल बाबू अपने ताया के पास बैठकर काम-काजकी बातोंमें प्रवृत्त हुए। बातों-ही-बातोंमें किस जगहकी जमींदारीकी क्या अवस्था है, यह सब पूछने लगे। कृष्णकान्तने गोविन्दलालको काम-काजमें मन लगाता देखकर सन्तुष्ट होकर कहा,—"अगर तुम थोड़ा देख-भाल करो; तो बहुत अच्छा हो। देखो मैं कितने दिन रहूँगा! तुम लोग यदि अभीसे सब समझ-बूझ न लोगे, तो मेरे मर जाने-पर कुछ भी समझ न सकोगे। देखो, मैं वृद्ध हुआ, कहीं आ-जा भी नहीं सकता। लेकिन बिना अपने गये, सारी जमींदारी निरंकुश हो रही है।

गोविन्दलालने कहा,—"आप यदि कहें तो मैं जा सकता हूँ। मेरी भी इच्छा है, एक बार सारी जमींदारी देख-सुन आऊँ।"

कृष्णकान्त बड़े प्रसन्न हुए। बोले—"मुझे इसमें बड़ी खुशी है। सम्प्रति बन्दरखालीमें कुछ गोलमाल भी हो गया है। नायब कहता है कि प्रजा सत्याग्रह कर रही है, रुपये नहीं दे रही है, प्रजा कहती

है कि हमलोग मालगुजारी देते हैं, नायब रसीद नहीं देता। तुम्हारी यदि इच्छा हो तो कहो, मैं तुम्हें वहाँ भेजनेका बन्दोबस्त करूँ।

गोविन्दलाल राजी हुए। वह इसीलिये कृष्णकान्तके पास आये थे। उनकी यह भरी जवानी है—सारी मनोवृत्तियाँ उबल रही हैं, सागर-तरङ्गकी तरह प्रबल हैं, सौन्दर्यकी प्यास परम सीमापर है। भ्रमरसे वह प्यास बुझती नहीं है। निदाघकी मेघमालाकी तरह रोहिणीका रूप इस चातककी आँखोंके सामने उदित हुआ—प्रथम वर्षाके बादलोंको देखकर मयूरोंके मनकी तरह गोविन्दलालका मन नाच उठा। गोविन्दलालने इसे समझकर मन-ही-मन शपथ खाकर स्थिर किया कि चाहे मर जाऊँ, किन्तु भ्रमरके सामने कभी प्रतारक—अविश्वासी न हूँगा। उन्होंने हृदयमें यह सङ्कल्प किया और इसी सङ्कल्पके अनुसार गोविन्दलालने अपने तायाके पास बैठकर काम-काजकी बातें की थीं। बन्दरखाली का हाल सुनकर बड़े आग्रहके साथ वहाँ जानेके लिए तैयार हुए।

भ्रमरने सुना कि मझले बाबू देहात जायेंगे। भ्रमरने कहा—"मैं भी जाऊँगी।" रोना-धोना, जिद शुरू हो गयी। लेकिन भ्रमरको सासने उसे किसी तरह भी जाने न दिया। नायब सजावार, नौकर चाकरसे परिवेष्टित हो, भ्रमरका मुख चुम्बन कर गोविन्दलाल इसकी राहमें पड़नेवाले बन्दरखालीके लिये यात्रा की।

पहले भ्रमर जमीनपर लोटकर रोयी, इसके बाद उठकर उसने विष्णुसहस्रनामकी पोथी फाड़ डाली, पिंजड़ा खोलकर चिड़ियोंको उड़ा दिया, गमलेमें लगे सारे फूलके पौधोंको उखाड़ फेंका, ना-

का भोजन रसोईदारपर फेंक दिया, मजदूरनीका झोंटा पकड़कर घुमाकर गिरा दिया, ननदके सङ्ग झगड़ा किया—इस तरह अनेक उपद्रव कर अन्तमें सोने गयी। लेटकर सरसे पैरतक चादर तानकर वह फिर रोने लगी। इधर अनुकूल वायु मिलनेसे गोविन्द लालकी नाव नदीकी धाराको चीरती हुई आगे बढ़ने लगी।

—:०:—

बीसवाँ परिच्छेद

कुछ अच्छा नहीं लगता—भ्रमर अकेली है। भ्रमरने बिछौना फेंक दिया—बहुत नर्म है। कमरेका पंखा खोल दिया—हवा बहुत गर्म है। मजदूरनियोंसे फूल लानेको मना कर दिया—फूलमें कीड़े हैं। ताश खेलना बन्द कर दिया—सखियोंके पूछनेपर कहती—ताश खेलनेसे सास बिगड़ती है। सुई, डोरा, ऊना, पेटर्न-सब एक-एक करके पड़ोसियोंको दे दिया। पूछनेपर बोली—आँखोंमें बड़ी ज्वाला है। घरमें धुले वस्त्र भरे पड़े हैं, लेकिन मैले कपड़े पहनती है, पूछनेपर धोबीको गाली देती है। माथेके बालोंका तेलसे सम्पर्क न था-काँसके जङ्गलकी तरह उसके बाल हवामें उड़ते थे-पूछनेपर हँसतेहुए, बालोंको और जटाकी तरह बाँध लेती है। भोजनके समय नित्य बहाना करने लगी—मैं न खाऊँगी, मुझे बुखार आ गया है। सासने कविराज बुलाकर औषधिकी व्यवस्था करा दी-क्षीरोदसे कहा गया कि बहूको समयपर दवा खिलानेका भार तुझपर है—अतः क्षीरोद जब दवा सामने लाती है, तो भ्रमर उसे लेकर खिड़कीके बाहर फेंक देती है।

क्रमशः भ्रमरकी यह नाराजगी क्षीरी मजदूरनीकी आँखोंमें असह्य हो उठी। क्षीरीने कहा—"भला बहूरानी! किसके लिये तुम यह सब करती हो? जिनके लिए तुमने आहार-निद्राका परित्याग कर दिया है, क्या वह एक दिनके लिए भी तुम्हारा ख्याल करते होंगे? तुम रो-रोकर मर रही हो और वह शायद फर्शीका नइचा मुँहमें लगाकर आँखें बन्दकर रोहिणी सुंदरीका ध्यान करते होंगे।"

भ्रमरने क्षीरीको तड़ाका एक थप्पड़ जड़ दिया। भ्रमरका हाथ नजाकतका पलता है। रुआँसी होकर कहने लगी—"तुम्हें अगर अपने मनकी बक-बक करनी हो तो हट जा मेरे सामनेसे।"

क्षीरीने कहा—"थप्पड़-थप्पड़से क्या किसीका मुँह बन्द हो जायगा? तुम्हारे क्रोधके डरसे हमलोग तुम्हारे सामने मुँह न खोलेंगी, लेकिन बिना कहे भी तो नहीं रहा जाता। पाची ग्वाला-लिनीको बुलाकर पूछो तो भला, उस दिन इतनी रातको रोहिणी बाबूके बगीचेसे लौट रही थी या नहीं?"

क्षीरोदाका भाग्य खराब था कि नखरे-नखरेसे उसने भ्रमरके सामने यह बातें कहीं। भ्रमरने उठकर थप्पड़-पर-थप्पड़, घूँसे-पर-घूँसे धौल-धौंल घुस्से-घुस्से लगाना शुरू किया। फिर बाल पकड़ गिराकर झोंटा पकड़कर लगी घसीटने। अन्तमें भ्रमर खुद रोने बैठी।

क्षीरोदा धींग-धींगमें भ्रमरके लात-घूँसे खाकर भी नाराज नहीं होती थी। लेकिन खास कुछ इसमें भी [illegible], नाराज हो गई। बोली—"लो बहूजी! हमें मारने-पीटनेसे क्या लाभ होगा? जो कहते हो कि हमलोग कहती हैं। तुम्हें [illegible]

तरहकी बातें कहते हैं—हमलोगोंसे वह सहा नहीं जाता। अगर हमारी बात पर तुम्हें विश्वास न हो तो पाँचीको बुलाकर पूछ लो।"

भ्रमर क्रोध और दुःखसे रोती-रोती बोली—"तुझे पूछना हो तो तू ही जाकर पूछ। मैं क्या तुमलोगोंकी तरह ओछी और पाजी हूँ कि अपने पतिकी बात पाँची चाण्डालिनीसे पूछने जाऊँगी? तू इतनी बड़ी बात मुझसे कहती है? साससे कहकर तुझे झाड़ू लगवाकर निकाल बाहर कराऊँगी। चल, हट जा, मेरे सामनेसे तू।"

सवेरे-सवेरे इस तरह क्षीरोदा मजदूरिन भले-बुरे दो-चार हाथ खाकर क्रोधसे बड़बड़ाती हुई चली गयी। इधर भ्रमर ऊपर मुँह उठाकर सजलनयन हो हाथ जोड़कर मन-ही-मन गोविन्द-लालको पुकारकर कहने लगी—"हे गुरो! शिक्षक, धर्मज्ञ, हमारे एकमात्र सत्यस्वरूप तुम्हीं हो। तुमने क्या उस दिन यही बात मुझसे छिपायी थी?"

उसके मनके भीतर जो मन है, हृदयके जिस छिपे स्थानको कोई देख नहीं सकता, जहाँ आत्मप्रवंचना नहीं है, वहाँतक भ्रमरने घुसकर देखा, स्वामीके प्रति उसके हृदयमें अविश्वास नहीं है। अविश्वास होता ही नहीं। भ्रमरने मनमें यह भी सोचा कि उनके अविश्वासी होनेसे भी दुःख क्या? मेरे मर जानेसे ही सब समाप्त हो जायगा। हिन्दू घरकी औरतें—मरना बहुत सहज समझती हैं।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

अब क्षीरी मजदूरनीने मनमें सोचा—यह घोर कलिकाल है, एक छोटी-सी लड़की मेरी बातपर विश्वास नहीं करती। क्षीरोदाके सरल अन्तःकरणमें भ्रमरके प्रति कोई राग-द्वेष नहीं है। वह भ्रमरकी मङ्गलाकांक्षिणी है सही, उसका अमङ्गल नहीं चाहती; लेकिन उसकी बात जो भ्रमरने कानमें नहीं पहुंचने दी, यह उसे असह्य है। क्षीरोदा अपने चिकने शरीरपर थोड़े तेलकी मालिश कर, रँगा हुआ अंगोछा कन्धेपर रख, कलसी बगलमें दबाकर वारुणी घाटपर स्नान करनेके लिये चली।

ब्राह्मणी हरमणि बाबूलोगोंके यहाँकी एक रसोईदारिन है। वह भी उसी समय तालाबसे स्नान कर लौट रही थी। पहले उसकी उसीके साथ मुलाकात हुई। हरमणिको देखकर क्षीरोदाने स्वयं ही कहा—इसीको कहते हैं, जिनके लिये चोरी करे, वही कहे चोर—अरे राम राम! बड़े लोगोंकी नौकरी नहीं हो सकती बाबा! कब किसका कैसा मिजाज रहे, क्या ठिकाना है?

हरमणिने जरा निन्दाकी गन्ध पाकर, दाहने हाथका [illegible] कपड़ा बाएँ हाथ पर रखकर पूछा,—"क्या हुआ बहन, क्षीरोदा! क्या हुआ है?"

क्षीरोदाने अपने मनका क्षोभ कुछ [illegible]—"बताओ न बहन! [illegible]

घूमने जायेंगी और हमलोग नौकर-मजदूरनी देखेंगे, तो भला मालिकसे न कहेंगे ?"

हर०—भला रे ! महल्लेकी कौन औरत गयी बाबूके बगीचेमें घूमने ?

क्षी०—और कौन जायेगी ? वही कलमुँही रोहिणी गई थी।

हर०—आग लगे भाग्यमें ! रोहिणीका यह हाल कबसे है ? किस बाबूके बगीचेमें रे, क्षीरोदा ?

क्षीरोदाने मझले बाबूका नाम लिया। इसपर दोनों आपसमें आँखें मटकाकर रसीली हँसीसे हँसती हुई अपने-अपने रास्ते पर चल पड़ीं। कुछ दूर जाते ही क्षीरोदासे महल्लेकी रामकी माँसे मुलाकात हुई। क्षीरोदाने उसे भी अपनी हँसीकी बाँधमें बाँधकर और खड़ी कराके रोहिणीके दौरात्म्यकी बात कह डाली। फिर दोनों कटाक्षकी हँसीसे अपनी-अपनी राह लगीं।

इस तरह क्षीरोदाने राहमें रामकी माँ, श्यामकी नानी, हीराकी मांसी और काली, तारा, फलानी-ढेकानी कितनोंसे अपने मर्मकी वेदनाका परिचय दिया, अन्तमें स्वस्थ-शरीर और प्रफुल्ल हृदयसे वारुणीके स्फटिक जैसे निर्मल जलमें स्नान किया। इधर हरमणिसे जितनी औरतोंसे मुलाकात हुई—रामकी माँ, श्यामकी नानी आदि-आदि सबसे—मझले बाबूके बगीचेमें हतभागिनी रोहिणीके जानेकी बात कह डाली। एक शून्य संयोगसे दश हो गया। दश शून्य सहयोगसे सौ और इसी तरह सौ हजारमें परिणत हुआ। जिस क्षीरीने भ्रमरसे सवेरे-सवेरे सूर्योदयके प्रथम

किरणके साथ-साथ वात कही, वही वात शामके अस्ताचलके समय तमाम महल्लेके घर-घर पहुँच गई, कि रोहिणी मझले वावूकी अनुगृहीत है। केवल वगीचेकी वातसे अपरिमेय प्रणयकी वात, अपरिमेय प्रणयसे अलङ्कार-गहने तक साथ ही और कितनी वातें उठीं, इसे मैं—हे रचनाकौशलमयी, कलङ्ककलितकण्ठा, कुल-कामिनीगण! इसे मैं अधम सत्यशासित लेखक आप लोगोंके सामने सविस्तर कहकर झंझट वढ़ाना नहीं चाहता।

धीरे-धीरे भ्रमरके पास तक खवर पहुँचने लगी। पहले विनो-दिनीने आकर कहा,—"अरे यह वात सच्ची है क्या?" भ्रमरने सूखे हुए चेहरे और टूटे हृदयसे पूछा,—"क्या सच है, महरा-जिन!" महराजिनने कामदेवके फूलके धनुषकी तरह अपनी भौंहें टेढ़ी कर आँखोंसे विजली छिटकाते हुए, लड़केको गोदमें वैठाकर कहा,—"अरे वही रोहिणीकी वात?"

भ्रमरने विनोदिनीसे कुछ न कहकर उसके गोदके लड़केको छीनकर अपनी गोदमें लेते हुए वाल्य-सुलभ खिलवाड़के वशीभूत हो उसे रुला दिया। विनोदिनी अपने वालकको स्तनपान कराती हुई चली गई।

विनोदिनीके वाद सुरधुनीने आकर कहा,—"क्यों मझली वहू! कहा था न कि मझले वावूकी दवा करो। हजार हो, तुम गोरी तो हो नहीं, आदमियोंका मन केवल वातसे ही तो पाया नहीं जाता, कुछ रूप-गुण चाहिये। लेकिन भाई! रोहिणीके पास कितनी वुद्धि है, कौन जाने?"

भ्रमरने कहा,—"बुद्धि ? काहेकी बुद्धि ?"

सुरधुनीने माथेपर हाथ मारकर कहा,—"अरे वाहरे भाग्य ! इतने आदमियोंने सुन लिया, सिर्फ तुमने नहीं सुना ? मझले बाबूने रोहिणीको सात हजार रुपयेके गहने न दिये हैं !"

भ्रमरकी हड्डी-हड्डी जल उठी। मन-ही-मन सुरधुनीको यमके हाथ समर्पण करने लगी। प्रकट रूपमें एक पुतलेका सर तोड़कर सुरधुनीसे बोली,—"यह मैं जानती हूँ। खाता भी देखा है। तेरे नाम चौदह हजारका गहना लिखा हुआ है।"

इस तरह विनोदिनी सुरधुनीके बाद रामी, वामी, श्यामी, कामिनी, रमणी, शारदा, प्रमदा, सुखदा, वरदा, कमला, विमला, शीतला, निर्मला, माधू, निधू-विधू, तारिणी, निस्तारिणी, दीन-तारिणी, भवतारिणी, सुरबाला, गिरिबाला, ब्रजबाला, शैलबाला आदि-आदि अनेकोंने एक-एक दो-दोकर आकर विरहकातरा बालिका-से कहा कि तुम्हारा पति रोहिणीका प्रणदासक्त है। कोई युवती, कोई अधेड़, कोई वृद्धा, किसी बालिकाने आकर कहा,—"अचरज क्या है ? मझले बाबूका रूप देखकर कौन नहीं भूल सकता। रोहिणीका सौन्दर्य देखकर वही क्यों न भूले होंगे ? किसीने आदरके साथ किसीने चिढ़ाकर, किसीने रशके साथ, किसीने रागवश, कोई-कोई दुःखसे, किसीने हँसकर, किसीने रोकर भ्रमरको सूचित किया,—"भ्रमर ! तुम्हारा भाग्य फूट गया।"

गाँवमें भ्रमर सुखी थी। उसका सुख देखकर सभी हिंसा करते थे—काली कुरूपाको इतना सुख, इतना ऐश्वर्य—देवदुर्लभ

स्वामी--लोकमें कलङ्करहित यश--पराजितको पद्मका आदर? कि इसपर मल्लिकाका सौरभ? गाँववालोंको इतना सहन न हुआ। इसीलिये दल बाँधकर, अकेले-दुकेले कोई लड़का दबाये हुई, कोई बहनको लिये हुई, कोई चोटी गुथती हुई; कोई अधगुथी चोटीसे, कोई खुले बालोंसे कहनेके लिये आयी—"भ्रमर! तुम्हारा मुख सूख गया।" किसीके मनमें यह न हुआ कि भ्रमर पतिविरहा-विधुरा, नितान्त दोषरहित दुःखिनी बालिका है।

भ्रमर अधिक सहन न कर सकनेके कारण दरवाजा बन्द कर जमीनपर लेट कर लगी रोने। मन-ही-मन बोली—"हे सन्देह-भञ्जन! हे प्राणाधिक? तुम्हीं मेरे सन्देह हो, तुम्हीं मेरे विश्वास हो। आज किससे पूछूं? मुझे क्यां सन्देह है? लेकिन सभी तो कह रहे हैं। सच न होनेसे सब क्यों कहेंगे? तुम यहाँ नहीं हो, आज मेरा सन्देह भञ्जन कौन करेगा? मेरा सन्देह नहीं टूटता है—तो मैं मर क्यों नहीं जाती। इस सन्देहके रहते क्या कोई बच सकता है? मैं मरती क्यों नहीं? लौटकर, प्राणेश्वर! भ्रमरको गाली न देना कि वह बिना कहे मर गयी।"

—०:※:०—

बाईसवाँ परिच्छेद

इस समय भ्रमरको भी वही ज्वाला है—रोहिणीको भी वही ज्वाला है। बात फैलनेपर रोहिणीके कानोंमें क्यों न पहुँचेगी? रोहिणीने सुना कि गाँवमें बात फैली है—गोविन्दलाल उसके

गुलाम हैं—सात हजारके गहने दिये हैं। वात कहाँसे उठी, किसने उठाया, कोई खवर इसकी उसने नहीं ली। एकदम यही निश्चय कर लिया कि भ्रमरने ही यह वात उठायी है, अन्यथा दूसरेको इतनी जलन क्यों होगी? रोहिणीने सोचा कि भ्रमरने मुझे वहुत जलाया। उस दिन चोरीका अपवाद—आज यह अपवाद! अंव इस गाँवमें न रहूँगी। लेकिन जानेसे पहले एकवार भ्रमरकी हड्डी-हड्डी जलाकर जाऊँगी।

यह तो पहलेके परिचयसे मालूम हो गया है कि ऐसा कोई काम नहीं, जिसे रोहिणी न कर सकती हो। रोहिणी किसी पड़ोसी-से एक वनारसी साड़ी और पूरा सेट गहना गिलटके माँग लायी। शाम हो जानेपर उन सवकी गठरी वाँधकर वह राय लोगोंके अन्तः-पुरमें पहुँची। अकेली भ्रमर जहाँ जमीनपर लेटी हुई कभी रोती, कभी आँसू पोंछकर पाटनकी धरन और कड़ी निहारती है, वहीं जा पहुँची और गठरी रखकर वैठ गई। भ्रमरको आश्चर्य हुआ रोहिणीको देखकर—उसका शरीर विपकी ज्वालासे जल उठा। असहनीय होनेपर भ्रमर वोली—"उस दिन रातको तुम ससुरके घरमें चोरी करने आई थी। आज रातको मेरे घर भी उसी अभिप्रायसे आई हो क्या?"

रोहिणीने मन-ही-मन कहा—"तुम्हारा मुँह फूँकने आई हूँ।" प्रकट वोली—"अव मुझे चोरीकी जरूरत नहीं है। अव रुपयोंकी कङ्गाल नहीं हूँ। मझले वावूकी कृपासे अव मुझे खाने-पहननेकी

तकलीफ नहीं है। फिर भी लोग जो बात कह रहे हैं, वे बातें नहीं हैं।"

भ्रमरने कहा—"तुम यहाँसे निकल जाओ।"

रोहिणीने बात अनसुनी कर कहा—"लोग जितना कह रहे हैं, उतना नहीं है। लोग कहते हैं कि मैंने सात हजारके गहने पाये हैं। सिर्फ तीन हजारका गहना और यह एक साड़ी पाया है। इसीलिये तुम्हें दिखाने आयी हूँ। सात हजार लोग क्यों कहते हैं?"

यह कहकर रोहिणी पोटली खोलकर वह साड़ी और गिलट-के गहने दिखाने लगी। भ्रमरने लात मारकर गहनोंको चारों तरफ छिटका दिया।

रोहिणी बोली—"सोनेको पैरसे नहीं छूना।" यह कहकर रोहिणी चुपचाप छिटके हुए गहनोंको बटोरकर पोटली बाँधने लगी। पोटली बाँधकर निःशब्द वह बाहर निकल गयी।

हमलोगोंको बड़ा दुःख रह गया। भ्रमरने क्षीरोदाको पीट दिया था, लेकिन रोहिणीको उसने एक चपत भी नहीं लगाया, यही हमारे आन्तरिक दुःखका कारण है। हमारी पाठिकाओंके वहाँ उपस्थित रहनेपर, रोहिणीको जो अपने हाथोंसे पीट देतीं, इसमें हमें कोई संशय नहीं है। स्त्रियोंपर हाथ नहीं उठाना चाहिये यह मानता हूँ। लेकिन राक्षसी या पिशाचिनीपर भी हाथ नहीं उठाना, यह भी मैं नहीं मानता। फिर भी भ्रमरने जो रोहिणीको नहीं मारा, यह समझ सकता हूँ। भ्रमर क्षीरोदासे प्रेम करती

है, इसलिये उसने उसे मार दिया। रोहिणीको तो प्यार करती नहीं, इसलिये उसने नहीं मारा। लड़कों-लड़कोंमें झगड़ा हो जाने-पर माता अपने ही लड़कोंको मारती है, दूसरे लड़कोंको नहीं।

—:※:—

तेईसवाँ परिच्छेद

उस रातके बाद ही सवेरा होते-न-होते भ्रमर पतिको पत्र लिखनेके लिये बैठी। लिखना-पढ़ना गोविन्दलालने सिखा दिया था; लेकिन लिखने-पढ़नेमें भ्रमर उतनी पक्की हुई न थी। फूलमें, खिलौनेमें, पक्षीमें, पतिमें ही भ्रमरका मन रहता था, लिखने-पढ़ने या गृहस्थीमें नहीं। कागज लेकर लिखने बैठती थी, एकबार मिटाती, एकबार काटती, फिर कागज बदलकर फिर मिटाती, फिर काटती थी। अन्तमें फेंक देती। दो-तीन दिनोंमें भी एक पत्र पूरा न होता था, लेकिन आज यह सब नहीं हुआ। टेढ़ी-तिरछी लाइनमें आज जो कुछ लेखनीकी नोकसे लिखा गया, सब भ्रमरके लिये ठीक था। म, भ की तरह हुआ, भ, म हो गया, फ, क की तरह तो क, फ की तरह, थ, य की तरह च, छ की तरह, इकारकी, जगह आकार; आकारका स्थान ही लुप्त, युक्त अक्षर अलग-अलग, बीचमें किसी अक्षरका लोप, लेकिन भ्रमर किसी तरह भी रुकी नहीं। आज एक घण्टेके अन्दर भ्रमरने एक बड़ा पत्र लिख मारा। काटाकुटी नहीं था—यह बात नहीं। हम पत्रका कुछ परिचय यहाँ देते हैं—भ्रमर लिखती है :—

"सेविका श्री भोमर" (इसके भोमर काटकर उसने भ्रमर बनाया) (दास्या: पहले दास्मा, फिर काटकर दास्य—उसे काटकर दास्यो—दास्यो: नहीं लिख सकी) प्रणामा: (प्र लिखने के पहले स्र इसके बाद श्र, अन्तमें प्र) निवेदनञ्च (पहले निवेदञ्च, इसके बाद निवेदनञ्च) 'विशेस' (आखिर 'विशेष:' नहीं ठीक हुआ)।

इसी तरहकी पत्र लिखनेकी प्रणाली थी। उसने जो कुछ लिखा, उसके अक्षर शुद्ध कर संशोधन कर नीचे लिखते हैं।

"उस दिन रातको बगीचेमें क्यों देर लगी, इसे तुमने खोलकर नहीं बताया। कहा था कि दो वर्ष बाद कहेंगे, लेकिन भाग्यदोष-से मैंने पहले ही सुन लिया। सुना क्यों देखा है। तुमने रोहिणी-को जो वस्त्र अलङ्कार दिये हैं, उन्हें उसने स्वयं मुझे दिखाया है।

'तुम शायद मनमें समझते होगे—तुम्हारे प्रति मेरी भक्ति अचल है—तुमपर मेरा अनन्त विश्वास है। मैं भी इसे जानती हूँ। लेकिन अब समझ गयी कि यह बात नहीं है। जितने दिन तक तुम भक्तिके योग्य थे, उतने दिनों तक मेरी भक्ति थी, जितने दिनों तक तुम विश्वसनीय थे, उतने दिनों तक मैं विश्वास करती रही। अब तुम्हारे प्रति न तो विश्वास है और न भक्ति ही है। तुम्हारे दर्शनसे अब मुझे सुख नहीं है। तुम जब घर लौटने लगना तो कृपाकरके मुझे खबर दे देना—मैं रो-धोकर जैसे बनेगा, पिताके घर चली जाऊँगी।"

गोविन्दलालने यथासमय यह पत्र पाया। उनके माथे पर वज्रा-घात हुआ। केवल हस्ताक्षर और अशुद्धियाँ देखकर ही उन्हें

विश्वास हो गया कि यह भ्रमरका लिखा हुआ है। फिर भी मनमें वार-वार सन्देह होने लगा—भ्रमर उन्हें ऐसा लिख सकती है— इसपर कभी उन्हें विश्वास न था।

उसी डाकसे और भी कितने पत्र आये थे। गोविन्दलालने सबसे पहले भ्रमरका ही पत्र खोलकर-भकटकर स्तम्भितकी तरह बहुत देरतक शून्यसे बैठे रहे। इसके बाद अनमने होकर दूसरे पत्र पढ़ने लगे। उसमें उन्होंने ब्रह्मानन्द घोषका भी एक पत्र पाया। कविताप्रिय ब्रह्मानन्द लिखते हैं।

"भैया! राजा-राजामें युद्ध होता है और प्राण जाता है सरपतों का। तुमपर बहूजी हरतरहका दौरात्म्य कर सकती हैं, लेकिन हमलोगोंपर यह क्यों? उन्होंने घोषित किया है कि तुमने रोहिणीको सात हजार रुपयोंके गहने दिये हैं और भी कितनी गर्हित बातें उड़ाई हैं—उन्हें लिखते लज्जा मालूम होती है। जो हो, तुमसे मेरी नालिश है—तुम इसका प्रतीकार करो। अन्यथा मैं यहाँका अपना निवास त्याग दूँगा। इति।"

गोविन्दलाल फिर अचरजमें पड़े। भ्रमरने बात उड़ायी है? कुछ भी तथ्य समझ न सकनेके कारण गोविन्दलालने उसी दिन आज्ञा दी—"यहाँका जलवायु मेरे अनुकूल नहीं है—मैं कल ही घरके लिये रवाना हूँगा। नाव तैयार करो।"

दूसरे दिन नावकी सवारीसे दुखी मनसे गोविन्दलालने घरके लिये सफर की।

—❀—

चौबीसवाँ परिच्छेद

जिससे प्रेम करो, उसे आँखोंकी ओट होने न दो। यदि प्रेम-बन्धनको दृढ़ रखना हो, तो सूत छोटा करो। चाहनेवालेको आँखोंके सामने रखो। बिना देखे, कितने विषम फल होते हैं। जिसे विदा करते समय कितना रोया है—मनमें सोचा था कि शायद उसे छोड़कर जी न सकोगे—कई वर्षों के बाद उससे जब फिर मुलाकात हुई, तब केवल यह पूछते हो—अच्छे तो हो? शायद इतनी बात भी नहीं हुई—बात ही न हुई—आन्तरिक विच्छेद हो गया। शायद राग अभिमानवश फिर मुलाकात ही न हुई। इतना चाहे न हो—एकबार आँखकी ओट होते ही—जो था, वह फिर नहीं होता। जो जाता है, वह फिर मिलता नहीं। जो टूट जाता है, वह फिर तैयार नहीं होता। मुक्तवेणीके बाद मुक्तवेणी कहीं देखी है।

भ्रमरने गोविंदलालको विदेश जाने देकर अच्छा नहीं किया। इस समय दोनों जनोंके एक साथ रहनेसे शायद मनोमालिन्य होने न पाता। वाद-विवादमें असली बात सामने आ जाती। भ्रमरको इतना भ्रम न होता। इतना क्रोध भी न होता। क्रोधसे सर्वनाश भी न होता।

गोविन्दलालके स्वदेश-यात्रा करनेपर नायबने कृष्णकान्तको पत्र लिख दिया कि आज मझले बाबूने घरके लिये यात्रा की। यह पत्र डाकसे आया। नौकाकी अपेक्षा डाक पहले आ जाती है। गोविन्द-लालके घर पहुँचनेके चार-पाँच दिन पहले ही कृष्णकान्तके पास

नायवका पत्र पहुँच गया। भ्रमरने सुना कि पति आ रहे हैं। उसी समय भ्रमर फिर पत्र लिखने वैठी। चार-पाँच कागज रद्दी कर दो-चार घण्टोंके वाद एक पत्र लिखकर तैयार हुआ। इस पत्रमें उसने माताको लिखा था—"मैं वहुत वीमार पड़ गयी हूँ। तुम लोग यदि एक वार मुझे लिवा जाओ तो मैं आराम हो जाऊँगी। देर न करना, रोग हट जाने पर फिर आराम न होगा। हो सके तो कल ही आदमी भेजना। यहाँ वीमारीकी वात प्रकट न करना।" इस पत्रको लिखकर गुप्त रूपसे चोरी मजदूरनी द्वारा आदमी ठीक कराकर भ्रमरने पित्रालय भेजवा दिया।

यदि माँके वदले और कोई आदमी होता तो पत्र पढ़ते ही समझ जाता कि इसके अन्दर कोई गोलमाल है। लेकिन माँ, वेटीकी वीमारीकी हाल पढ़कर एकदम घवरा उठी। भ्रमरकी सासको एक लाख गाली देकर स्वामी पर भी विगड़ी और रो-धोकर पक्का कियत कि आगामी कल नौकर, पालकी लेकर मजदूर-नियोंके साथ भ्रमरको लेने जायँ। भ्रमरके पिताने कृष्णकान्तको पत्र लिखा। चालाकीसे भ्रमरकी वीमारीका कोई हाल न लिखकर लिखा कि—"भ्रमरकी माँ वहुत वीमार हो गई है—भ्रमरको एक वार देखनेके लिये भेज दीजिये। दास-दासियोंको भी इसी तरह सिखा-पढ़ा दिया।

कृष्णकान्त वड़े विपद्में पड़े। इधर गोविन्दलाल आ रहे हैं—ऐसे समय भ्रमरको पित्रालय भेजना उचित नहीं। उधर भ्रमरकी

माता बीमार हैं—न भेजनेसे भी नहीं चलता। आगा-पीछा सोच-कर वृद्धने चार दिनोंके लिये भ्रमरको भेज दिया।

इधर गोविन्दलाल आ पहुँचे। सुना कि भ्रमर पित्रालय गई है, आज उसे लिवानेके लिए पालकी जायगी। गोविन्दलाल सब समझ गये। मन-ही-मन बड़ा अभिमान हुआ। उन्होंने मनमें सोचा,—"इतना अविश्वास! न पूछा, न समझा मुझे छोड़कर चली गई। मैं अब उस भ्रमरका मुंह न देखूंगा। भ्रमर जिसकी न होगी, क्या वह जिन्दा न रहेगा?

यह सोचकर गोविन्दलालने भ्रमरको बुलवानेके लिए मातासे मना कर दिया। क्यों मना किया, यह प्रकट न किया। उनकी राय पाकर फिर बहूको बुलानेकी कृष्णकान्तने कोई कोशिश न की।

पचीसवाँ परिच्छेद

इस तरह दो-चार दिन बीत गये। न तो भ्रमरको कोई लेने ही गया और न भ्रमर खुद आई ही। गोविन्दलालने सोचा कि भ्रमरकी स्पर्द्धा बढ़ गयी है, उसे थोड़ा रुलाऊँगा। भ्रमरने बड़े अविचारका काम किया है, थोड़ा रुलाऊँगा। पहले तो एक-एक कमरेको शून्य देखकर खुद रोये। भ्रमरके साथ झगड़ा है, यह सोचकर रोये। भ्रमरके अविश्वासका खयाल कर रोये। फिर, आँखोंके आँसू पोंछकर क्रोधमें आये। क्रोधावेशमें भ्रमरको भूलनेकी चेष्टा करने लगे। लेकिन क्या मजाल है कि भूल सकें? सुख

चला जाता है, लेकिन स्मृति नहीं जाती। घाव अच्छा हो जाता है, लेकिन घावका दाग नहीं मिटता। मनुष्य मर जाता है; परन्तु नाम रह जाता है।

अन्तमें गोविंदलालने बेवकूफी कर सोचा कि भ्रमरको भूलनेकी सबसे बढ़िया राह है, रोहिणीका ध्यान। रोहिणीकी अलौकिक रूपप्रभाने एक दिनके लिये भी गोविन्दलालके हृदयको परित्याग किया न था। गोविन्दलाल जबर्दस्ती उसे अपने हृदयसे हटाते थे, लेकिन वह हटती न थी। उपन्यासोंमें पढ़ा है कि किसी घरमें भूतका दौरात्म्य हुआ, भूत दिन-रात ताक-झाँक लगाये रहता है, लेकिन ओझा उसे भगा देता है। उसी तरह रोहिणी गोविन्दलालके हृदयमें जबर्दस्ती आकर बैठती है और गोविंदलाल उसे भगा दिया करते हैं। जैसे जल-तलमें चन्द्र-सूर्य नहीं, बल्कि उनकी छाया रहती है, वैसे ही गोविंदलालके हृदयमें हमेशा रोहिणी नहीं, बल्कि उसकी छाया बनी रहती है। गोविन्दलालने सोचा कि यदि भ्रमरको भूलना है, तो रोहिणीका ख्याल करना पड़ेगा—अन्यथा यह दुःख भुलाया जा नहीं सकता। अनेक कुचिकित्सक मामूली रोगके लिए भयानक विषका प्रयोग किया करते हैं। गोविंदलाल भी मामूली रोगके उपशमके लिए भयानक विष-प्रयोगमें प्रवृत्त हुए। गोविन्दलाल स्वयं अपने पैर पर आप कुल्हाड़ी मारने को तैयार हुए।

रोहिणीकी बात पहले स्मृतिमात्र थी, बादमें दुःखमें परिणत हो गई। दुःख वासनामें परिणत हुआ। गोविन्दलाल उसी

वारुणीतट पर पुष्पलताओंसे घिरे हुए मण्डपके नीचे बैठकर वासनाका अनुताप कर रहे थे। वर्षाकाल था। आकाश बादलोंसे घिरा हुआ था। वर्षा कभी तेज हो जाती थी, तो कभी धीमी, लेकिन बन्द हुई न थी। सन्ध्या प्रायः हो चली थी। एक तो शामके समयका अन्धेरा, दूसरे बादलोंके घिरे रहनेके कारण वारुणीतट दिखाई पड़ता न था। गोविन्दलालको धुंधले रूपमें दिखाई दिया कि एक स्त्री घाटपर उतर रही है। रोहिणीका वहाँ पहुँचना गोविन्दलालके मनके अनुरूप हुआ। वर्षाके कारण घाटपर बड़ी फिसलन हो गई है—पैर फिसल जानेसे पानीमें गिरने पर स्त्री विपदमें पड़ सकती है, यह सोचकर गोविन्दलाल कुछ त्रस्त हुए। मण्डपसे ही बैठे-बैठे उन्होंने आवाज लगाई—"कौन है भाई। आज घाटपर न उतरना, बड़ी फिसलन है, गिर पड़ोगी।"

नहीं कह सकते कि स्त्रीने उनकी बात स्पष्टतया सुनी या नहीं। पानी बरस रहा था, मालूम होता है, वर्षाके आवाजके कारण स्त्रीने मजेमें बात सुनी नहीं। उसने अपनी कलसी बगलसे उतार कर घाटपर झुकाई और इसके बाद फिर सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। वह धीरे-धीरे गोविन्दलालके पुष्पोद्यानकी तरफ बढ़ी। उद्यानका दरवाजा खोलकर उसने उसमें प्रवेश किया। इसके बाद वह गोविन्दलालके पास मण्डपमें पहुँच गई। गोविन्दलालने देखा, सामने रोहिणी है।

गोविन्दलालने कहा—"भीगती हुई यहाँ क्यों, रोहिणी?"

रो०—आपने क्या मुझे बुलाया है?

गो:—बुलाया नहीं था। घाटपर बड़ी फिसलन है, उतरनेके लिये मना कर रहा था। खड़ी-खड़ी भींगती क्यों हो ?

रोहिणी साहस पाकर मण्डपमें आगई। गोविन्दलालने कहा—"लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे ?"

रो०—जो कहना है, अभी कहती हूँ। आपसे एक दिन कहूंगी, इसलिये बड़े कोशिशमें थी।

गो०—मुझे भी इस सम्बन्धमें अनेक बातें पूछनी हैं। यह बात किसने उड़ाई ? तुम लोग भ्रमरको क्यों दोष देती हो ?

रो०—सब बात बताती हूँ, लेकिन यहां खड़ी-खड़ी कहूँ क्या ?

गो०—नहीं; मेरे साथ आओ।

यह कहकर गोविन्दलाल रोहिणीको बुलाकर बगीचेके बैठकखानेमें ले गये।

वहाँ इन लोगोंमें जिस तरह बातें हुईं, उसका यहाँ परिचय देनेकी हमारी प्रवृत्ति नहीं है। केवल इतना ही कहना यथेष्ट है कि उस रात अपने घर लौटनेसे पहले रोहिणी यह समझ गई कि गोविन्दलाल उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हैं।

छत्तीसवाँ परिच्छेद

सौन्दर्य पर मुग्ध ? कौन किसके सौन्दर्य पर मुग्ध नहीं है। मैं इस हरे नीले रंग वाले प्रजापति पर मुग्ध हूँ। तुम

कुसुमित कामिनी शाखा पर मुग्ध हो। इसमें दोष ही क्या है? रूप तो मोहके लिए ही पैदा हुआ है।

गोविन्दलालने भी पहले इसी तरह सोचा। पापकी प्रथम सीढ़ीपर चढ़कर पुण्यात्मा भी इसी तरह सोचा करते हैं। लेकिन जैसे बाहरी जगतके बीच आकर्षण है, वैसे ही अन्तर्जगतमें भी पापका आकर्षण है, पग-पगपर पतनकी गति बढ़ती ही जाती है। गोविन्दलालका अधःपतन भी बड़ी तेजीसे हुआ, क्योंकि सौंदर्यकी प्यासने बहुत दिनोंसे उसका हृदय सुला दिया था। हम केवल रो सकते हैं, अधःपतनका वर्णन नहीं कर सकते।

क्रमशः कृष्णकान्तके कानों तक भी गोविन्दलाल और रोहिणीकी बात पहुँची। कृष्णकान्त दुःखी हुए। गोविन्दलालके चरित्रमें किसी तरहका कलङ्क लगने पर उन्हें बहुत दुःख होता है। मन-ही-मन उन्होंने सोचा कि गोविन्दलालको उपदेश देंगे लेकिन बीमार पड़ जानेके कारण कुछ न हो सका। शयन-कक्ष त्याग ही न पाते थे। गोविन्दलाल उन्हें देखनेके लिए नित्य जाते हैं। उस समय सेवकोंसे घिरे रहनेके कारण कृष्णकान्त गोविन्दलालको सबके सामने कुछ कह नहीं सकते थे। उधर रोग भी बढ़ने लगा। एकाएक कृष्णकान्तके मनमें हुआ कि मालूम होता है, चित्रगुप्तका लेखा पूरा हो चला है। इस जीवनका सागर-संगम सामने है। अधिक विलम्ब होनेसे बात शायद कह भी न सकूं। एक दिन बहुत रात गये गोविन्दलाल बगीचेसे वापस आए, उसी दिन कृष्णकान्तने सोचा कि कहेंगे। गोविन्दलाल उन्हें

देखनेके लिए आये। कृष्णकान्तने अन्यान्य सबको हट जानेको कहा। अन्य सबके हटने पर गोविन्दलालने कुछ अप्रतिभ होकर कहा—"आपकी तबियत आज कैसी है ?

कृष्णकान्तने क्षीण स्वरमें कहा—"आज तबियत ठीक नहीं ! तुम्हें इतनी रात क्यों हुई ?

गोविन्दलालने इस बातका कोई जवाब न देकर कृष्णकान्तका हाथ पकड़कर उनकी नाड़ी देखी। एकाएक गोविन्दलालका मुँह सूख गया। कृष्णकान्तका जीवन-प्रवाह बड़ी मन्द गतिपर था। गोविन्दलालने केवल इतना ही कहा—"मैं अभी आता हूँ।"

गोविन्दलाल कृष्णकान्तके कमरेसे निकलकर सीधे कविराजके घर पहुँचे। वैद्य भी आश्चर्यमें पड़े। गोविन्दलालने कहा—महाशय ! जल्दी दवा लेकर चलिये, तायाजीकी तबियत अच्छी जान नहीं पड़ती।" वैद्य भी घबराकर दवा लेकर दौड़ पड़ा। कृष्णकान्तके कमरेमें वैद्यके साथ गोविन्दलालने प्रवेश किया। कृष्णकान्त कुछ डरे। कविराजने नाड़ी देखी। कृष्णकान्तने पूछा—"क्यों, कुछ शंका हो रही है ?" वैद्यने कहा—"मनुष्य-शरीरमें कब शंका नहीं रहती ?"

कृष्णकान्त समझ गये। बोले—"कितनी मियाद बाकी है ?"

वैद्यने उत्तर दिया—"दवा खिलानेके बाद बता सकूँगा।"

वैद्यने खरलमें दवा घिस-घासकर तैयार की और कृष्णकान्तको खानेके लिए दिया। कृष्णकान्तने औषधिकी खल हाथमें लेकर एक बार मस्तकसे लगाया। इसके बाद उसे पीकदानमें गिरा दिया।

वैद्य दुखी हुआ। कृष्णकान्तने यह देखकर कहा—"दुखी न होइये। दवा खाकर बचनेकी अवस्था अब मेरी नहीं है। औषधिकी अपेक्षा भगवन्नामसे अब मेरा उपकार होगा। तुमलोग नामोच्चारण करो, मैं सुनूँगा।

कृष्णकान्तके अतिरिक्त और किसीने भी हरिनाम न लिया। कृष्णकान्तने गोविन्दलालसे कहा—"मेरे सिरहानेमें, दराजकी चाबी है, उसे बाहर करो।"

गोविन्दलालने तकियाके नीचेसे ताली निकाली।

कृष्णकान्तने कहा—"दराज खोलकर विल बाहर निकालो।"

गोविन्दलालने दराज खोलकर विल बाहर निकाला।

कृष्णकान्तने कहा—मेरा अपना मुहर्रिर और गाँवके दस भले आदमीको बुलाओ तो?"

इसी समय बुलाये जाकर नायब, मुहर्रिर, कारकून, चट्टोपाध्याय, मुखोपाध्याय, बन्दोपाध्याय, भट्टाचार्य, घोष, वसु, मित्र, दत्त सब कमरेमें घुसे।

कृष्णकान्तने एक मुहर्रिरको आज्ञा दी—"मेरा विल पढ़ो।"

मुहर्रिरने विल पढ़कर समाप्त किया।

कृष्णकान्तने फिर कहा—"वह विल फाड़ डालना होगा। दूसरा विल लिखो।

मुहर्रिरने पूछा—"क्या लिखना होगा?"

कृष्णकान्त बोले—"जिस तरह है; उसी तरह, केवल—"

"केवल क्या?"

"केवल गोविन्दलालका नाम काटकर उसकी जगह मेरे भतीजेकी वहू भ्रमरका नाम लिखो। भ्रमरके न रहनेपर गोविन्द-लाल इसका आधा पावेगा।

सब निस्तब्ध रह गये। किसीने कोई बात न कही। मुहर्रिरने गोविन्दलालके चेहरेकी तरफ देखा। गोविन्दलालने इशारा किया—"लिखो"

मुहर्रिरने लिखना शुरू किया। लिखना समाप्त होनेपर कृष्ण-कान्तने हस्ताक्षर किया। गवाहोंने अपने दस्तखत बनाये। गोविन्दलालने स्वयं उपयाचक होकर विल लेकर उसपर अपना हस्ताक्षर बना दिया।

विलमें गोविन्दलालको एक कौड़ी भी नहीं—भ्रमरको आधा हिस्सा।

उसी रात भगवन्नाम उच्चारण करते हुए तुलसी चौरेपर कृष्णकान्तने अपना देह त्यागकर परलोकगमन किया।

—:❀:—

सत्ताईसवाँ परिच्छेद

कृष्णकान्तकी मृत्युकी खबर पाकर देशके लोगोंमें बहुत क्षोभ उत्पन्न हुआ। किसीने कहा—"एक इन्द्रका अन्त हुआ।" किसीने कहा—"एक दिग्पाल मर गया।" किसीने कहा—"पर्वत-शिखर टूट गया।" कृष्णकान्त विषयी अवश्य थे; किंतु थे अच्छे आदमी। गरीबों और ब्राह्मणोंको यथेष्ट दान दिया करते थे। अतः अनेक लोग उनके लिये कातर हुए।

सबसे अधिक भ्रमर। अब काम पड़नेपर भ्रमरको बुलाना ही पड़ा। कृष्णकान्तकी मृत्युके दूसरे दिन गोविन्दलालकी माताने इन्तज़ाम कर बहूको बुलानेके लिये आदमी भेजा। भ्रमरने आकर कृष्णकान्तके लिये रोना शुरू किया।

यह मैं नहीं बता सकता कि गोविन्दलाल और भ्रमरकी पहली मुलाकातमें रोहिणीको लेकर कोई महाकाण्डकी सम्भावना है या नहीं। फिर भी, कृष्णकान्तकी मृत्युके कारण वह सारी बातें दबी रह गयीं।

भ्रमरके साथ गोविन्दलालकी जब पहली मुलाकात हुई, तो उस समय भ्रमर अपने ससुरके लिये रो रही थी। गोविन्दलालको देखकर वह और भी रोने लगी। गोविन्दलालने भी आँसू बहाये।

अतएव जिस महाकाण्डकी आशंका थी, वह जाती रही। दोनों ने ही यह समझ लिया। दोनोंने ही अपने मनमें स्थिर किया कि जब पहली मुलाकातमें ही कोई बात न कही, तो अब उठानेकी जरूरत भी नहीं—महाकांडका यह समय नहीं, अर्थात् कृष्णकांतका श्राद्धकर्म हो जाय, तो जिसके मनमें जो है, वह होगा। यही सोचकर एक दिन उपयुक्त समय पाकर गोविन्दलालने भ्रमरसे कहा,—"भ्रमर! तुमसे मुझे बहुतसी बातें कहनी हैं। बातें करनेमें मेरी छाती फट जायगी। पितृशोकसे भी बढ़कर जो शोक हो सकता है, आज मैं उसीसे कातर हूँ। अतः इस समय वह बातें मैं उठा नहीं सकता। श्राद्धके बाद जो कुछ कहना होगा, कहूँगा। इस बीच यह प्रसंग उठानेकी जरूरत नहीं।"

भ्रमरने भी बड़े कष्टसे आँखोंके आँसू रोककर कल्प परिचित देवता, काली, दुर्गा, शिव, हरिका स्मरणकर कहा,–"उसे भी कुछ कहना है। जब अवकाश मिले तो पूछना।"

और कोई बात न हुई। जिस तरह दिन बीतते हैं, वैसे ही बीतने लगे। हाँ, देखनेमें तो उसी तरह कटने लगे, लेकिन दास-दासी, गृहिणी, पड़ोसी आत्मीय-स्वजन कोई भी यह जान न सका कि आकाशमें मेघ छा गये हैं, कुसुममें कीड़ेने प्रवेश किया है. इस चारु प्रेम-प्रतिमामें घुन लग गया है। वस्तुतः घुन लग गये थे। जो पहले था, आज वह नहीं है। जो हँसी पहले थी, आज वह हँसी नहीं है। क्या भ्रमर नहीं हँसती? गोविन्दलाल क्या नहीं हँसते? हँसते हैं, लेकिन उस हँसीमें वह पहलेका-सा मजा न रहा। आँखसे आँख मिलते ही जो हँसी आपसे आप उछल पड़ती थी, वह हँसी अब नहीं है। जिस हँसीमें आधी प्रीति और आधी हँसी रहती थी, वह अब नहीं है। जिस हँसीके बलसे संसार सुखी है, जिसके अर्धांशसे लोग सुखी हैं–अर्धांशसे कहते हैं, इच्छा पूरी नहीं हुई–अब वह हँसी नहीं है। अब वह कटाक्ष भी नहीं—जिस कटाक्ष-को देखकर भ्रमर सोचती थी,–"इतना रूप!"–जिस दृष्टिको देखकर गोविन्दलाल सोचते,–"इतना गुण!" वह दृष्टि अब नहीं है। जिस दृष्टिमें गोविन्दलालकी स्नेहपूर्ण स्थिर दृष्टि प्रमत्त आखें देखकर भ्रमर मनमें सोचती थी कि शायद इस प्रेम-समुद्रको इस जीवन-में तैर कर पार कर नहीं सकूँगी—जिस दृष्टिको देखकर गोविन्द-लाल उसका ख्याल कर संसार भूल जाते थे, वह दृष्टि अब

नहीं है। अब वह प्रिय सम्बोधन भी नहीं है—वह 'भ्रमर' 'भोमरा' 'भोमर' भोम, भूमि, भूम, भों-भों—यह सब नित्य नये, नित्य नव-स्नेहपूर्ण, सुखपूर्ण, सम्बोधन अब नहीं हैं। वह काली, काला-चन्द, कालासोपा, कालामाणिक, कालिन्दी आदि प्रिय सम्बोधन नहीं हैं। वह आपसमें एक होना-पुकारना-अब नहीं है। वह व्यर्थकी बकवाद झगड़ा-लड़ाई अब नहीं है। वह बातोंका अभिनव ढंग भी नहीं। पहले बातें समाप्त ही न होती थीं-अब बातें खोज-कर निकालनी पड़ती हैं। वह बातें आधी भाषासे, आधी आँखोंसे, अधर-अधरपर प्रकाश पाती थीं—अब वह सब बातें छप्पर पर गयीं। वह बातोंका प्रयोजन नहीं—केवल कण्ठस्वर सुननेकी स्पृहा रहती थी अब वह सब लुप्त हैं। पहले गोविन्दलाल और भ्रमरके एक जगह रहनेपर कोई खोजकर गोविन्दलालको पाता न था—कोई पुकार कर भी भ्रमरकी खबर पाता न था—वही अब एकत्र होनेपर 'बड़ी गरमी है' "कोई बुलाता है।" कहकर एक-न एक वहाँसे हट जाता है। वह सुन्दर पूर्णिमा मेघसे आवृत्त है। कार्त्ति-कीय एकाको ग्रहण लग गया है। किसने उस सोनेमें जस्तेकी खाद मिला दी—किसने उस मिले हुए स्वरका तार तोड़ दिया है?

अब उस मध्याह्न रविकर प्रफुल्ल हृदयमें अन्धेरा हो गया है। गोविन्दलाल उस अन्धकारको दूर करनेके लिए, प्रकाशके लिये रोहिणीका चिन्तन करते थे-भ्रमर उस अन्धकारको मिटानेके लिये यमका चिन्तन करती थी। हे यम! तुम्हीं निराश्रयके आश्रय, जगत के एकमात्र गति, प्रेमशून्यके लिये प्रीतिकारण हो! चित्त प्रफुल्ल

करनेवाले, दुख दूर करनेवाले, विपद्भंजन, दीनरंजन तुम्हीं हो, यम ! निराशाकी आशा, अप्रेमीके प्रेमी, तुम्हीं हो ! यम, हे यम ! भ्रमरको ग्रहण करो।

—:※:—

अट्ठाइसवाँ परिच्छेद

इसके बाद कृष्णकांत रायका श्राद्ध धूमधामसे हो गया। शत्रुओं ने कहा—"हा, घटा घिरी, पाँच-सात दस हजार रुपये उड़ गये।" मित्र लोगोंने कहा—"एक लाख रुपये खर्च हुए।" कृष्णकान्तके उत्तराधिकारियोंने अपने मित्रोंसे कहा—लगभग पचास हजार रुपये खर्च हुए हैं। हमने खाता देखा है। कुल व्यय ३२३५६।–)॥ है।

जो हो, कई दिन बड़े झंझटमें कटे। हरलाल श्राद्धाधिकारी थे उन्होंने आकर श्राद्ध किया। कई दिन मक्खियोंकी भनभनाहटमें तेज पत्तेकी झलझलाहटसे, कंगालोंके कोलाहलसे, नैयायिकोंके विचा से गाँवमें कान नहीं दिया जाता था। संदेश मिठाईकी बाढ़, कंगाले की बाढ़, रामनामी छापे चादरकी बाढ़, कुटुम्बके कुटुम्ब, उस कुटुम्ब, उसके भी कुटुम्बवालोंकी बाढ़ थी। लड़कोंने मोतीचूर लड्डू लेकर गेंद खेलना शुरू किया, स्त्रियोंने नारियलके तेल कमी देखकर पूरीका घी बालोंमें लगाना शुरू किया, होटलवालों होटल बन्द हो गया, सब मांसखोर फलाहारी हो गये; शराब दूकान बन्द हो गयी, सब शराबी रामनामी ओढ़कर दक्षिणा लेने लिये पहुँच गये। चावलका अकाल पड़ गया; केवल अन्न-व्यय

नहीं; इतना मैदा खर्च हुआ कि चावलके विना लोगोंका काम नहीं चलता। इतना घी खर्च हुआ कि बाजारमें केष्टर आयल कम हो गया। अहीरोंके यहां दूध लेने जानेपर वे कहते थे—"हमलोगों का दूध ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे दही बन गया है।"

किसी तरह श्राद्धका झंझट समाप्त हुआ। विल पढ़े जानेकी सलाह हुई। विल पढ़कर हरलालने देखा, कि विलमें बहुतसे गवाह हैं—किसी तरहकी जालसाजीकी गुंजाइश नहीं है। हरलाल श्राद्ध समाप्त होने पर अपने स्थानको लौट गये।

विल पढ़ने-सुननेके बाद गोविन्दलालने भ्रमरसे कहा—"विल-की बात सुनी ?"

भ्रमर—क्या ?

गो०—तुम्हारे नाम आधी सम्पत्ति है।

भ्र०—मेरा नहीं—तुम्हारा है।

गो०—अब हमारे तुम्हारेमें कुछ फर्क पड़ गया है। मेरा नहीं तुम्हारा है।

भ्र०—यह होनेसे हीं तो तुम्हारा हुआ।

गो०—तुम्हारे धनका मैं भोग नहीं कर सकता।

भ्रमरको बड़ी रुलाई आयी। लेकिन भ्रमरने अहङ्कारके वशी-भूत होकर रुलाई पीकर कहा,—"तब क्या करोगे ?"

गो०—जिससे दो पैसा कमा सकूँ, वही करूँगा।

भ्र०—वह क्या ?

गो०—देश-विदेश घूमकर नौकरीकी चेष्टा करूँगा।

भ्र०—सम्पत्ति मेरे बड़े ससुरकी नहीं है, मेरे ससुरकी है। तुम्हीं उनके उत्तराधिकारी हो, मैं नहीं हूँ। बड़े ससुरको विल करनेका कोई अधिकार ही नहीं था। विल नाजायज है। मेरे पिताने श्राद्धके समय आकर यह बात मुझे समझा दी है। सम्पत्ति तुम्हारी है, मेरी नहीं।

गो०—मेरे ताया झूठे नहीं थे। सम्पत्ति तुम्हारी है—मेरी नहीं। उन्होंने जब तुम्हारे नाम लिख दिया है, तो सम्पत्ति तुम्हारी है, मेरी नहीं।

भ्र०—यदि तुम्हें यह सन्देह हो तो मैं सम्पत्ति तुम्हारे नाम लिख दे सकती हूँ।

गो०—तुम्हारा दान लेकर जीवन-धारण करना पड़ेगा, मुझे।

भ्र०—इसमें हर्ज ही क्या है? मैं तुम्हारी दासानुदासी नहीं हूं क्या?

गो०—आजकल यह बातें शोभा नहीं देती हैं, भ्रमर!

भ्र०—मैंने क्या किया है? मैं तुम्हें छोड़कर इस संसारमें और किसीको नहीं जानती। आठ वर्षकी उम्रमें मेरी शादी हुई थी—आज सत्रह वर्षकी हुई हूँ। इन नौ वर्षों में मैं और कुछ नहीं जानती—जानती हूँ, तो केवल तुम्हें। मैं तुम्हारे द्वारा प्रतिपालित हूँ—तुम्हारे खेलका खिलौना हूँ—मुझसे क्या अपराध हुआ है?

गो०—मनमें सोचकर देखो।

भ्र०—असमयमें पित्रालय चली गयी थी—गलती हुई है—मुझसे लाखों अपराध हुए हैं—मुझे क्षमा करो। मैं और कुछ नहीं

जानती, सिर्फ तुम्हें जानती हूँ—इसलिये मनमें अभिमान आ गया था।

गोविन्दलाल चुप रहे। उनके सामने आलुलायित-कुन्तला, अश्रुलोचना, विवशा, कातरा, मुग्धा, पैरोंपर लोटती हुई वह सत्रह-वर्षीया सहधर्मिणी थी। गोविन्दलाल चुप रह गये। गोविन्दलाल मनमें सोच रहे थे,—"यह काली है! रोहिणी कितनी सुन्दरी है! इसके पास गुण हैं—रोहिणीके पास रूप है। इतने दिनों तक गुण-की सेवा की है—कुछ दिनों रूपकी सेवा करूँगा। अपना यह असार, आशाशून्य, प्रयोजनशून्य जोवन इच्छानुसार बिताऊँगा। मिट्टीके घड़ेको जिस दिन चाहूँगा, तोड़ डालूँगा।"

भ्रमर पैर पकड़कर रो रही है—"क्षमा करो! मैं बालिका हूं!"

—जो अनन्त सुख-दुःखके विधायक हैं; जो अन्तर्यामी कातरके बन्धु हैं, अवश्य उन्होंने इन बातोंको सुना, लेकिन गोविन्दलालने न सुना। चुप रह गये। गोविन्दलाल रोहिणीका ध्यान कर रहे थे। तीव्र ज्योतिर्मयी, अनन्त प्रभाशालिनी, प्रभात शुक्रतारा रूपिणी, रूप-तरङ्गिणी चञ्चला रोहिणीका ध्यान कर रहे थे।

भ्रमरने उत्तर न पाकर कहा,—"क्या कहते हो?"

गोविन्दलालने कहा,—"मैं तुम्हारा परित्याग करूँगा।"

भ्रमरने पैर छोड़ दिया। वह उठी। बाहर जा रही थी। चौकठा से ठोकर खाकर गिरकर बेहोश हो गयी।

—:०:—

उनतीसवाँ परिच्छेद

"मैंने क्या अपराध किया है कि मुझे त्याग दोगे?"

यह बात भ्रमर गोविन्दलालके सामने कह न सकी। लेकिन इस घटनाके बाद हर क्षण वह अपने मनसे पूछने लगी,—"मेरा क्या अपराध है?"

गोविन्दलाल भी मन-ही-मन अनुसन्धान करने लगे—"भ्रमर का क्या दोष है?" भ्रमरसे जो विशेष बड़ा अपराध हुआ है, वह गोविन्दलालके मनमें एक तरहसे बैठ गया है। लेकिन अपराध क्या है, यह खोजकर भी पा न सके। सोचनेपर मनमें विचार उठता कि भ्रमरने अपने मनमें मेरे प्रति जो अविश्वास किया है, अविश्वास करके ही जो इतना कठिन पत्र मुझे लिखा था—एक बार उनसे सत्य-मिथ्याके बारेमें पूछा भी नहीं, यही अपराध है। जिसके लिये इतना किया, इतना सहज ही उसने मुझपर अविश्वास किया, यही उसका अपराध है। हमने कुमति-सुमतिकी बात पहले ही लिखी है। गोविन्दलालके हृदयमें पास-पास बैठकर दोनोंमें जो तर्क-वितर्क हो रहे हैं, उसे सुनाता हूं।"

कुमतिने कहा,—"भ्रमरका पहला अपराध यही है कि उसने अविश्वास किया।"

सुमतिने उत्तर दिया,—"जो अविश्वासके योग्य हैं, उसपर क्यों न अविश्वास होगा? तुम रोहिणीके साथ आन्योपभोग कर रहे हो, भ्रमरने इसे ही सोचकर सन्देह किया था, क्या यही उसका दोष है?

कुमति—अब न मैं दोषी हुआ हूँ, लेकिन भ्रमरने जिस समय अविश्वास किया था, उस समय तो मैं निर्दोष था।

सुमति—दो दिन आगे पीछेसे क्या आता जाता है? दोष तो

किया न! जो दोष करनेमें सक्षम है, उसे दोषी करार देना क्या भारी अपराध है?

कुमति—भ्रमरने मुझे दोषी ठहराया, इसीलिये मैं दोषी हो गया—साहुको चोर बना देनेसे वह चोर हो जाता है।

सुमति—दोष जो चोर कहे उसका है! जो चोरी करता है, उसका नहीं! वाह!

कुमति—तेरे साथ झगड़ा करके मैं पार न पाऊँगी। देखो न, भ्रमरने मेरा कैसा अपमान किया है। मैं विदेशसे आ रहा हूँ, यह सुनकर बापके घर चली गयी।

सुमति—उसने जो कुछ सोचा था, उसमें यदि उसका विश्वास दृढ़ था, तो ऐसी हालतमें उसने कुछ बुरा न किया। स्वामीके वेश्यागामी हो जानेपर नारी-देह धारण करनेवाली कौन धर्म-पत्नी होगी, जो क्रोध न करेगी?

कुमति—यह विश्वास ही तो उसका भ्रम है—और दोष ही क्या है?

सुमति—यह बात क्या कभी उससे पूछी?

कुमति—नहीं।

सुमति—तुम बिना पूछे क्रोध करती हो, और भ्रमर नितान्त बालिका है, बिना पूछे ही क्रोधका इतना बड़ा [illegible]? यह व्यर्थकी बातें हैं; असली रोगका कारण बताऊं?

कुमती—क्या, कहो न?

सुमति—असली जड़ रोहिणी है। रोहिणी से ही [illegible] हुआ है—इसलिये काली भ्रमर अब अच्छी नहीं लगती है।

कुमति—इतने दिनों तक भ्रमर कैसे अच्छी लगी ?

सुमति—उस समय तक रोहिणी मिली न थी। एक ही दिनमें तो कुछ हो नहीं जाता। समय पर सब बातें होती हैं। आज धूप निकली हुई है, इसलिए कल दुर्दिन हो नहीं सकता ? केवल यही नहीं—और भी कुछ है।

कुमति—और क्या ?

सुमति—कृष्णकान्तका विल। बूढ़ा मन-ही-मन जानता था कि सम्पत्ति भ्रमरके नाम लिखनेके माने भी यही है कि वह गोविंद-लालकी है। यह भी जानते थे कि भ्रमर उस सम्पत्तिको एक महीनेके अन्दर लिख देगी। लेकिन अन्ततः तुम्हें दुष्ट कुपथगामी देखकर चरित्र सुधारनेके लिये तुम्हें भ्रमरके अंचलमें बाँध गये और तुम इतनी सी बात न समझकर भ्रमरके ऊपर क्रोध कर रहे हो।

कुमति—यह ठीक है। लेकिन क्या मैं स्त्रीका दिया धन खाऊंगा ?

सुमति—सम्पत्ति तो तुम्हारी ही है। भ्रमरसे तुम क्यों नहीं अपने नाम करा लेते ?

कुमति—यही तो कहता हूँ, क्या स्त्रीके दानपर जीवन-धारण करूं ?

सुमति—अरे बाप रे ! बड़े भारी पुरुषसिंह हो ? तो भ्रमरके साथ मुकद्दमा करके डिग्री क्यों नहीं करा लेते ? सम्पत्ति तो तुम्हारी पैतृक है ही।

कुमति—स्त्रीके साथ मुकद्दमेबाजी करूँ।

सुमति—और क्या करोगे? बाज़ार जाओ—बाज़ार।

कुमति—इसी चेष्टामें तो हूँ।

सुमति—रोहिणी साथ जायगी न?

इसपर सुमति-कुमतिमें खूब झोंटा-झोंटी और घूँसा-घूँसी हुआ।

—:o:—

तीसवाँ परिच्छेद

मेरा ऐसा विश्वास है कि गोविंदलालकी माता यदि पक्की गृहिणी होतीं तो फूँक मात्रसे इस काले मेघको उड़ा देतीं। वह समझ गई थीं कि बहूके साथ बेटेका आन्तरिक कलह हो गया है। स्त्रियाँ यह सहज ही समझ जाती हैं। यदि इस समय वह अपने सदुपदेश, स्नेह-वाक्य और स्त्री-सुलभ चातुर्यसे काम लेतीं और इसका प्रतीकार करना चाहतीं तो अवश्य सुफल दिखाई देता। लेकिन गोविंदलालकी माता पक्की गृहिणी नहीं हैं; विशेषतः पुत्र-वधूके संपत्तिकी अधिकारिणी बन जानेपर कुछ स्वयं जल उठी थीं। भ्रमर पर उनका वह स्नेह ही नहीं था तो वह भ्रमरकी भलाई कैसे चाह सकती थीं? पुत्रके रहते हुए धनकी मालिका बहू हुई, यह उन्हें असह्य हो गया। उन्होंने एक बार भी अनुरोध न किया कि भ्रमर और गोविंदलालकी संपत्ति परस्परके लिए अभिन्न है, विशेषतः गोविन्दलालके चरित्र-दोषके कारण ही उन्हें दंड देनेके लिए कृष्णकान्त रायने ऐसा किया। उन्होंने एक बार भी यह न समझा कि वृद्धावस्थामें कृष्णकान्तके विकृतबुद्धि होनेके कारण यह अनुचित कर गये हैं। उन्होंने सोचा कि बहूके मालकिन होनेपर केवल खाने-पहननेको [illegible]

होकर एक कुटुंबकी तरह मुझे इस घरमें रहना पड़ेगा। अतएव उन्होंने संसार-त्याग करना ही श्रेयस्कर समझा। एक तो पतिहीना, कुछ आत्मपरायणा भी, दूसरे पुत्र-स्नेहके कारण, पति वियोगके समयसे ही काशीवासकी इच्छुक होकर भी जा न सकीं। इस समय वह वासना और भी प्रबल हुई।

उन्होंने गोविन्दलालसे कहा—"मालिकोंने एक-एककर स्वर्गका रास्ता लिया। अब मेरा भी समय समीप आ गया है। इस समय तुम पुत्रका कर्त्तव्य पालन करो, मुझे काशी भेज दो।

गोविंदलाल भी एकाएक इस प्रस्तावपर सहमत हो गये। बोले, "चलो मैं तुम्हें स्वयं काशी पहुँचा आऊँगा।" दुर्भाग्यवश—इस समय भ्रमर एकबार पित्रालय गई थी। किसीने उन्हें मना न किया। अतएव भ्रमरकी अनुपस्थितिमें ही गोविन्दलाल काशी-यात्राकी सारी तैयारी करने लगे। उनकी अपने नाम कुछ संपत्ति थी, उसे उन्होंने बेचकर चुपचाप कुछ धन संचय किया। सोना, हीरा इत्यादि जितनी मूल्यवान संपत्ति थी, सब उन्होंने बेच डाला। इस तरह कुल कोई एक लाख रुपये संग्रहीत हुए। गोविन्दलालने इसीके द्वारा भविष्य जीवन बितानेका निश्चय किया।

इसके बाद माताके साथ काशी यात्राका दिन स्थिर कर उन्होंने भ्रमरको बुलवा भेजा। सास काशीवास करेंगी यह सुनकर भ्रमर तुरत आई और उनके सासके पैरोंपर गिरकर रोते हुए कहा—'माँ, मैं बालिका हूँ—मुझे अकेली छोड़कर न जाओ—मैं संसार-धर्म आदि कुछ नहीं जानती। माँ, यह संसार समुद्र है. मुझे इसमें अकेली डुबा

कर न जाओ।" सासने कहा—"तुम्हारी बड़ी ननद है। मेरी ही तरह वह तुम्हारा ख्याल रखेगी—और अब तुम भी गृहणी हुई।" भ्रमर कुछ न समझ सकी—केवल रोती रही।

भ्रमरने देखा सामने महा विपद् है। सास त्याग कर जा रही है—मेरे पति भी उन्हें पहुँचानेके लिये जा रहे हैं—वह भी पहुँचाने जाकर शायद फिर न लौटेंगे। भ्रमर गोविन्दलालके पैर पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगी। बोली—"बता जाओ, कितने दिनोंमें लौटोगे?"

गोविन्दलालने कहा—"कह नहीं सकता। लौटनेकी इच्छा तो नहीं है।"

भ्रमर पैर छोड़कर उठ खड़ी हो गयी। उसने मनमें सोचा, "डर काहेका है? जहर खा लूँगी।"

इसके बाद स्थिर किया हुआ यात्राका दिन आ गया। पालकी द्वारा हरिद्रा ग्रामके कुछ दूर जानेपर ट्रेन मिलती है। शुभ यात्राका लग्न उपस्थित हुआ—सब तैयार हो गये। सवेरे-ही सवेरे सन्दूक, बिस्तर, बाक्स, बेग, गठरी मजदूरे ढोने लगे। साथमें जानेवाले दास-दासी धुले वस्त्र पहनकर दरवाजाके पास खड़े हो पान खा रहे थे। दरबानोंने अपनी पोशाक पहनकर लाठी हाथमें लेकर पालकी ढोनेवाले कहारोंपर रोब जमाना शुरू किया। महल्लेके बच्चे और स्त्रियाँ देखनेके लिये आ जमीं। गोविन्दलालकी माताने गृह-देवताओंको प्रणाम कर, गाँववालोंसे यथायोग्य सम्भाषण कर रोते-रोते शिविकारोहण किया। सम्बन्धी पड़ोसी सभी रोने लगे। वह पालकीपर चढ़कर आगे बढ़ीं।

इधर गोविन्दलाल अन्यान्य लोगोंसे प्रिय-सम्भाषण कर शयनगृहमें भ्रमरसे विदा होनेके लिये चले। भ्रमरको रोते हुए हिचकियाँ भरते देखकर वह जो कहने आये थे, कह न सके; केवल इतना ही कहा—"भ्रमर ! मैं माँको पहुँचाने जा रहा हूँ।"

भ्रमरने बड़े कष्टसे अपनी आँखोंसे आँसू पोंछकर कहा—"माँ वहाँ रहेंगी। तुम क्या लौटकर आओगे ?"

भ्रमरने उपर्युक्त प्रश्न जब किया, तो उसकी आँखोंके आँसू सूख गये थे; उसके स्वरमें दृढ़ता, गम्भीरता, उसके होठोंपर दृढ़ प्रतिज्ञाको देखकर गोविन्दलाल कुछ अचरजमें आये। एकाएक कोई जवाब दे न सके। भ्रमरने पतिको चुप देखकर फिर कहा—'देखो, तुम्हींने मुझे सिखाया था कि सत्य ही एकमात्र धर्म, सत्य ही एकमात्र सुख। आज तुम मुझसे सच कहो, मैं तुम्हारी आश्रित बालिका हूँ—मुझे आज धोखा न देना—बोलो कब आओगे ?"

गोविन्दलालने जवाब दिया—"तो फिर सच ही सुन लो। मेरी लौटनेकी इच्छा नहीं है।"

भ्रमर—क्यों इच्छा नहीं—क्या यह बता जाओगे ?

गो०—यहाँ रहनेसे तुम्हारा अन्नदास होकर रहना पड़ेगा।

भ्रमर—तो इसमें हर्ज क्या है ? मैं तो तुम्हारी दासीकी भी दासी हूँ।

गो०—मेरी दासानुदासी भ्रमर मेरे विदेशसे लौटनेकी प्रतीक्षामें खिड़कीपर बैठी रहेगी। ऐसे समय पित्रालय न चली जायगी।

भ्रमर—इसके लिये कितना पैर पड़ चुकी हूँ—क्या एक अपराध क्षमा नहीं किया जा सकता है ?

गो०—उस तरहके अब सैकड़ों अपराध होंगे। तुम अब सम्पत्तिकी मालिका हो।

भ्रमर—यह बात नहीं। मैं इस बार बापके घर जाकर, पिताकी सहायतासे जो कर आयी हूँ, उसे देखो।

यह कहकर भ्रमरने एक कागज दिया। उसे गोविन्दलालके हाथमें देकर कहा—"पढ़ो।"

गोविन्दलालने पढ़कर देखा—दानपत्र है। भ्रमर उचित मूल्यके स्टैम्पपर अपनी सारी सम्पत्ति गोविन्दलालको दान करती है। उसकी रजिस्ट्री हो चुकी है। गोविन्दलालने उसे पढ़कर कहा—

"तुम्हारे योग्य कार्य जो था, उसे तुमने किया है। लेकिन मेरा तुम्हारा क्या सम्बन्ध है, मैं तुम्हें अलङ्कार दूँ और तुम उसे पहनो; यह नहीं कि तुम सम्पत्ति दान करो और मैं उसका भोग करूँ।" यह कहकर गोविन्दलालने उस बहुमूल्य दान-पत्रको टुकड़े-टुकड़े कर फाड़ फेंका।

भ्रमर बोली,—"पिताजीने कह दिया है, इसे फाड़ फेंकना व्यर्थ है। अदालतमें इसकी नकल मौजूद है।"

गो०—रहने दो—रहने दो। मैं चला।

भ्रमर—कब आओगे?

गो०—न आऊँगा।

भ्रमर—क्यों? मैं तुम्हारी धर्मपत्नी हूँ; तुम्हारी शिष्या हूँ; तुम्हारी आश्रिता हूँ, तुम्हारे द्वारा प्रतिपालित हूँ—तुम्हारी दासीकी भी दासी हूँ—तुम्हारे कण्ठस्वरकी भिखारिणी हूँ—क्यों न आओगे?

गो०—इच्छा नहीं है।

भ्रमर—क्या धर्म भी नहीं है?

गो०—शायद वह भी नहीं।

बड़े कष्टसे भ्रमरने अपने आँसू रोके। दृढ़तासे आँसू पलट गये। इसके बाद भ्रमर हाथ जोड़कर अति कम्पित कण्ठसे कहने लगी,—"तो जाओ—हो सके, तो न आना। मुझ निरपराधिनीका त्याग करना चाहते हो, तो करो। लेकिन याद रखना, ऊपर भगवान हैं। याद रखना, एक दिन मेरे लिये तुम्हें रोना पड़ेगा। याद रखना, —एक दिन तुम खोजोगे कि इस पृथ्वी पर अकृतिम आन्तरिकका स्नेह कहाँ है?—देवता साक्षी हैं! यदि मैं सती हूँगी, कायमनोवाक्यसे तुम्हारे चरणोंमें यदि मेरी भक्ति होगी, तो मेरी तुम्हारी फिर मुलाकात होगी। मैं इसी आशापर अपने प्राण रखूँगी! अब जाओ—इच्छा हो तो कह दो—फिर न लौटूँगा। किन्तु मैं कहे रखती हूँ—तुम फिर आओगे—तुम फिर भ्रमर कहकर बुलाओगे—फिर मेरे लिये रोओगे। यदि यह बातें निष्फल हों, तो जान लेना—देवता मिथ्या हैं; धर्म मिथ्या है; भ्रमर असती-कुलटा है! तुम जाओ, मुझे कोई दुःख नहीं। तुम मेरे हो—रोहिणीके नहीं हो।"

यह कहकर भ्रमरने भक्तिपूर्वक पति-चरणोंमें प्रणाम कर, गजगन्धगतिसे दूसरे कमरेमें जाकर दरवाजा बन्द कर लिया।

इकतीसवाँ परिच्छेद

इस आख्यायिकाके आरम्भ होनेके पहले ही भ्रमरके पुत्र होकर

सूतिकागृहमें ही मर चुका था। भ्रमर आज दूसरे कमरेमें जाकर अपने सात दिनके मृत पुत्रके लिये रोने लगी। फर्शपर लेटकर धूलमें सनती हुई अशमित निश्वास फेंकती हुई पुत्रके लिये रोने लगी। "मेरी आँखोंकी पुतली, मेरे कंगालके सोना आज तुम कहाँ हो? आज तेरे रहते किसकी हिम्मत थी कि मुझे त्याग देता। मेरी ममता तो तोड़ दी—तेरी ममता कैसे तोड़ते? मैं कुरूपा, कुत्सिता हूँ—तुझे कौन कुत्सित कहता? तुझसे बढ़कर कौन सुन्दर है? एकबार दिखाई दे जाओ, बच्चे—इस विपदके समय भी क्या एकबार भी दिखाई न दोगे? मर जानेपर क्या कोई फिर दिखाई नहीं देता?"

इसके बाद भ्रमर हाथ जोड़कर ऊपर आकाशकी तरफ देखती हुई देवताओंसे पूछने लगी,—कोई मुझे बता दो, मेरे किस दोषसे, इस सत्रह वर्षकी उम्रमें ही मेरी ऐसी असम्भव दुर्दशा हुई—मेरा पुत्र मरा—मेरे स्वामीने मुझे त्याग दिया। मेरी उम्र कुल सत्रह वर्ष है—मुझे इस उम्रमें पति-प्रेम छोड़कर और कुछ न चाहिये। मुझे इहलोकमें और कोई कामना नहीं है—और कोई कामना करना सीखा ही नहीं। मैं इस सत्रह वर्षकी अवस्थामें इससे निराश क्यों हुई?"

भ्रमरने रो-पीटकर निश्चय किया कि देवतागण नितांत निष्ठुर हैं। जब देवता ही निष्ठुर हैं, तब मनुष्य सिवा रोनेके और क्या कर सकता है? सिर्फ रोऊँगी। भ्रमर सिर्फ रोने लगी।

इधर गोविन्दलाल भ्रमरके पाससे बिदा होकर धीरे-धीरे बाहर

मकानमें आये। हम सत्य बात कहेंगे—गोविन्दलाल आँखोंके आंसू पोंछते-पोंछते बाहर आये। गोविन्दलालके मनमें आया कि उस बालिकाकी प्रीति बड़ी सरल है—अकृत्रिम, उद्वेलित बात-बात में व्यक्त है, जिसका प्रवाह दिन-रात बहता है—भ्रमरका वही अमूल्य प्रेम पाकर गोविन्दलाल सुखी हुए थे। मनमें आया कि जिसका वह त्याग कर रहे हैं, वह फिर पृथ्वीपर प्राप्त न होगा। सोचा, अब आगे बढ़ चुका हूँ—पीछे पैर रख नहीं सकता—अब तो जाना ही होगा। आज यात्रा कर रहा हूँ, शायद फिर लौटना न हो सके। जो हो जब यात्रा की है, तो जाना चाहिये।

उसी समय यदि गोविन्दलाल दो पैर पीछे पलटकर भ्रमरके बन्द दरवाजेपर धक्का देकर एक बार कह देते,—"भ्रमर! मैं फिर आता हूं।" तो सब कलह मिट जाता। गोविन्दलालकी कई बार यह इच्छा हुई। इच्छा होते भी वे कर न सके। इच्छा होनेपर भी लज्जा मालूम हुई। सोचा, इतनी जल्दी काहेकी है? जब इच्छा होगी तो लौट आऊँगा। भ्रमरके सामने गोविन्दलाल अपराधी हैं। फिर भ्रमरके सामने आनेका साहस न हुआ। जो हो, कुछ निश्चय करनेकी बुद्धि उनकी न हुई। जिस राहपर आगे बढ़ रहे थे, उसी राहसे बढ़ने लगे। चिन्ता त्यागकर वह मोहके बाहर निकले और सजे हुए घोड़ेपर चढ़कर एँड़ लगायी। राहमें जाते-जाते रोहिणीकी रूपराशि हृदयमें फूट पड़ी।

—:o:—

द्वितीय खण्ड

पहला परिच्छेद

पहला वर्ष

हरिद्रा ग्रामके मकानमें खवर आयी—गोविन्दलाल माता आदिके साथ निर्विघ्न कुशलपूर्वक काशी पहुँच गये। भ्रमरके पास कोई पत्र न आया। अभिमानवश भ्रमरने भी कोई पत्र न लिखा। पत्रादि कार्यकर्त्ताओंके पास आने लगे।

एक मास गया, दो मास वीते; पत्र वरावर आता रहा। अंतमें एक दिन खवर आयी कि गोविन्दलालने काशीसे घरके लिए प्रस्थान किया है।

भ्रमर समझ गयी कि गोविन्दलालने केवल माताको धोका देनेके लिये वहाना किया है, और कहीं अन्यत्र जा रहे हैं। घर आयेंगे, इसका भरोसा उसे न रहा।

इसी समय भ्रमर छिपे-छिपे सदा रोहिणीकी खवर लेती रही। रोहिणी रसोई वनाती है, खाती है, शरीर मल-मलकर साफ करती है, पानी भरती है, इसके अतिरिक्त और कोई खवर नहीं। इसके वाद ही एक दिन खवर आयी कि रोहिणी वीमार है। घरके अन्दर मुंह छिपाकर पड़ी रहती है। वाहर नहीं निकलती। ब्रह्मानन्द खुद रसोई वनाते और खाते हैं।

इसके वाद एक दिन खवर आयी कि रोहिणी कुछ अच्छी हुई है, लेकिन रोगकी जड़ गयी नहीं है। शूल रोग है—इसकी चिकित्सा नहीं। रोहिणी आरोग्य होनेके लिये तारकेश्वर गलेमें फांसी लगानेके

लिए जायेगी! अन्तमें खबर मिली–रोहिणी गलेमें फांसी लगानेके लिये तारकेश्वर गयी। अकेली ही गयी है—साथमें कौन जायेगा?

इधर तीन-चार महीने बीत गये, गोविन्दलाल लौटकर न आये; पांच-छः महीने हुए—गोविन्दलाल लौटे नहीं। भ्रमरके रोनेका मन न था। सिर्फ मनमें यही चिन्ता रहती है, अब कहाँ हैं—कैसे हैं—खबर मिले तो जानमें जान आये। यह संवाद ही क्यों नहीं मैं पाती।

अन्तमें ननद द्वारा सासको पत्र लिखाया—आप माता हैं—अवश्य ही पुत्रका संवाद पाती होंगी। सासने उत्तरमें लिखा कि वे गोविन्दलालकी खबर पाया करती हैं। शीघ्र ही वहांसे दूसरी जगह जायेंगे। कहीं स्थायी रूपमें ठहरते नहीं हैं।

इधर रोहिणी भी फिर न लौटी। भ्रमर सोचने लगी कि भगवान् ही जाने कि रोहिणी कहां गयी? मैं अपने मनका सन्देह अपने मुंहसे न निकालूंगी। भ्रमर अब अधिक सह न सकी। रोते-रोते ननदसे कहकर पालकीकी सवारीसे वह अपने पिताके घर चली गयी।

वहां जाकर गोविंदलालकी खबर पाना दुरूह समझ कर फिर लौट आयी। हरिद्राग्राम लौट कर पतिकी कोई खबर न पाकर फिर सासको पत्र लिखवाया। सासने भी इसबार लिखा कि "गोविन्द-लाल अपनी कोई खबर नहीं देता। नहीं जानती कि इस समय वह कहां है। कोई खबर नहीं मिली।" पहले वर्षका अन्त होते-होते भ्रमर खाटपर पड़ गयी। अपराजिता पुष्प सूखने लगा!

दूसरा परिच्छेद

भ्रमरके बीमार पड़ जानेकी खबर पाकर भ्रमरके पिता उसे देखनेके लिये आये। भ्रमरके पिताका सविशेष परिचय हमने दिया नहीं है। अब देता हूँ। भ्रमरके पिता माधवीनाथ सरकारकी उम्र यही कोई इकतालीस वर्षकी है। देखनेमें वह सुपुरुष हैं; लेकिन उनके चरित्रके बारेमें बड़ा मतभेद है। अनेक लोग उनकी प्रशंसा करते हैं। अनेक लोगोंका कहना है कि इनके जैसा दुष्ट और कोई न होगा। उनकी चतुराईके सभी कायल हैं। साथ ही जो उनके प्रशंसक हैं, वे उनसे डरते रहते हैं।

माधवीनाथ लड़कीकी दशा देखकर बहुत रोये। उन्होंने देखा—वह श्यामा सुन्दरी, जिसके समूचे अङ्गकी गठन बड़ी ही सुललित थी—इस समय विशुद्धवदन, शीर्ण शरीर, पुकटकण्ठास्थि, निमग्ननयनेन्दीवर है। भ्रमर भी बहुत रोयी। अन्तमें दोनोंके रोकर चुप होनेके बाद भ्रमरने कहा,—"बाबूजी! जान पड़ता है, मेरे चलनेके दिन आ गये हैं। मुझे कुछ धर्म-कर्म करा दो। मेरी कम उम्र होनेसे क्या हुआ, मेरे दिन तो समाप्त हो गये हैं। समय समाप्त हो रहा है, तो देर क्यों करूँ? मेरे पास बहुत रुपये हैं; मैं व्रत उपवास किया चाहती हूं। कौन यह सब करायेगा? बाबूजी! तुम इसकी व्यवस्था करा दो।

माधवीनाथने कोई जवाब न दिया। असाध्य यन्त्रणा हो उठने पर वह मरदानेमें आये। मरदानेमें बैठकर बहुत देर तक रोते रहे। केवल रोदन ही नहीं,—उस मर्मभेदी दुखने माधवीनाथके हृदयमें

भयङ्कर क्रोधका संचार किया। मन-ही-मन सोचने लगे,—"जिसने मेरी कन्यापर यह अत्याचार किया है, इस जगतमें उसपर क्या कोई अत्याचार करनेवाला नहीं है?" सोचते-सोचते माधवीनाथके हृदयमें दुःखके बदले घोर क्रोध परिव्याप्त हो गया। माधवीनाथने भृत्ती आँखोंसे प्रतिज्ञा की—"जिसने मेरी भ्रमरका ऐसा सत्यानाश किया है, मैं भी उसका वैसा ही सत्यानाश करूँगा।"

तब माधवीनाथने बहुत कुछ शान्त होकर 'अन्तःपुरमें पुनः प्रवेश किया। कन्याके पास जाकर बोले,—"बेटी! तुम व्रत-नियम-की बात कह रही थी; मैं भी वही सोच रहा था। इस समय तुम्हारा शरीर बहुत दुर्बल है; व्रत-नियम करनेमें अनेक उपवास करने पड़ेंगे। इस समय तुम उपवास सह न सकोगी। जरा शरीर ठीक हो जाने—।"

भ्र०—यह शरीर क्या ठीक होगा?

मा०—जरूर ठीक होगा, बेटी। हुआ क्या है? तुम्हारी चिकित्सा नहीं हो पाती है, फिर कैसे होगा? ससुर नहीं, सास नहीं, कोई पास में नहीं है-कौन चिकित्सा करायेगा? तुम अब मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें अपने यहाँ रखकर दवा कराऊँगा। मैं अभी यहाँ दो दिन रहूँगा—इसके बाद तुम्हें साथ लेकर राजग्राम जाऊँगा।

भ्रमरका पित्रालय राजग्राममें है।

कन्याके पाससे उठकर माधवीनाथ कन्याके कार्यकर्ता अम-लोंके पास आये। दीवानजीसे पूछा,—"बाबूजीकी कोई चिट्ठी वाट्ठि आती है?" दीवानजीने जवाब दिया—"नहीं।"

माधवीनाथ—वह इस समय कहाँ हैं ?

दीवानजी—उनकी कोई भी खबर हमलोगोंके पास नहीं, वह कोई खबर ही नहीं भेजते।

माधवी०—किससे यह खबर मिल सकेगी ?

दीवानजी—यह यदि मालूम होता तो हमलोग स्वयं खबर लेते। काशीमें माताजीके पाससे खबर लेनेके लिये आदमी भेजा था—लेकिन वहाँसे भी कोई खबर नहीं मिली। बाबू इस समय अज्ञातवास कर रहे हैं।

—:※:—

तीसरा परिच्छेद

माधवीनाथने कन्याकी दुर्दशा देखकर स्थिर प्रतिज्ञा की थी—"इसका बदला लेंगे। रोहिणी और गोविन्दलाल इस अनिष्टकी जड़ हैं। अतएव पहले इनकी खबर लेनी ही होगी। पामर पामरी हैं कहाँ? अन्यथा दुष्टोंका दण्ड कैसा होगा ? भ्रमर भी मरेगी।"

वह सब एकदम छिपे हुए हैं। जिन सूत्रोंसे उनका पता लग सकता है वह सब अव्यवस्थित हैं, पद-चिह्न तक मिटा दिये गये हैं; लेकिन माधवीनाथने कहा—"यदि मैं उनका पता न लगा सकूँ, तो व्यर्थ है मेरे पौरुषका घमण्ड।"

इस प्रकार स्थिर-संकल्प होकर माधवीनाथ अकेले राय-निवाससे बाहर हुए। हरिद्रा ग्राममें एक पोस्टआफिस है। महीना पानेवाले एक डिपुटी पोस्टमास्टर वहाँ विराजमान हैं। आमकी लकड़ीके बने एक टेबुलपर कितनी ही चिट्ठियाँ, चिट्ठियोंकी फाइल,

लिफाफा, मुहर आदि लेकर पोस्टमास्टर बाबू डाक-पियनके सामने अपनी वाहवाही दिखाते हुए बैठे हैं। डिपुटी पोस्टमास्टर बाबू पाते हैं १५) रुपये; और पियन बेचारा कुल ७) रुपये। अतः पियन सोचता है, कि १५) आने और ७ आनेमें जितना फर्क है, वही फर्क उसमें और बाबूमें है। इससे अधिक नहीं। लेकिन बाबू अपने मनमें सोचते हैं कि मैं पोस्टबाबू हूँ और वह एक पियन, अतः मुझमें उसमें जमीन-आसमानका अन्तर है। मैं उसका हर्त्ता, कर्त्ता, विधाता पुरुष हूँ। इसलिये इस बातको सप्रमाण सिद्ध करनेकी गरजसे पोस्टबाबू बेचारे गरीबपर गरजते-तरजते रहते हैं और वह भी अपने सात आनेके वजनके मुताबिक जवाब दिया करता है। आपाततः बाबू चिट्ठीका वजन कर रहे थे और साथ ही साथ प्यादेकी अस्सी आनेके वजनके मुताबिक भर्त्सना कर रहे थे। ऐसे ही समय प्रशान्तमूर्ति सहास्यमुख माधवीनाथने वहाँ आकर दर्शन दिया। भले आदमीको देखकर पोस्टबाबू पियनकी भर्त्सना त्याग कर मक्खीकी तरह उनका मुँह देखने लगे। भले आदमियोंका सम्मान करना चाहिये—यह मनमें होनेपर भी बेचारा अपनी शिक्षाके अनुसार कुछ न कर सका।

माधवीनाथने देखा, सामने एक बन्दर है। हँसते हुए उन्होंने कहा—"कुशल ?"

पोस्टमास्टरने कहा—"हाँ, तु-तुम-आ-आप ?

माधवीनाथने मुस्कुराते हुए हाथ माथे तक ले जाकर और मस्तक झुकाकर कहा—"प्रातः प्रणाम।"

इसपर पोस्ट मास्टर बाबूने कहा—"बैठिये।"

माधवीनाथ कुछ विपद्में पड़े। पोस्ट बाबूने तो कह दिया—बैठिये, बैठें कहाँ—बाबू स्वयं एक तीन पैरवाली तिपायीपर बैठे हैं और वहाँ उनके बैठनेके लिये कोई चीज नहीं। तब उन बाबूके सात आनावाले प्यादा हरिदासने बुद्धिमानी दिखाकर एक टूटी तिपाई परसे वही आदि हटाकर बैठनेके लिये दिया। माधवीनाथने बैठकर और उसे भर दृष्टि देखकर कहा—

"क्यों भाई! कैसे हो? तुम्हें तो बहुत दिनोंसे नहीं देखा?"

पियन—जी, मैं यहाँ चिट्ठी बाँटा करता हूँ।

माधवी—यह तो जानता हूँ। भला एक चिलम तमाखू चढ़ाओ तो सही।

माधवीनाथ दूसरे गाँवके आदमी हैं, उन्होंने कभी हरिदास बैरागी पियनको देखा नहीं था और बैरागी बाबाजीने भी कभी बाबूको देखा न था। बाबाजी ने मन में सोचा कि चेहरे लिबाससे तो पक्के बाबू ही जान पड़ते हैं—हो सकता है, जानेके समय चार आने बख्शीसके मिल जायँ। यही सोचकर हरिदास हुक्केकी खोजमें दौड़ा।

माधवीनाथ तमाखू बिलकुल नहीं पीते। केवल हरिदास बाबाजीको वहाँसे बिदा करनेके लिये ही उन्होंने फर्माइश की थी।

पियनके स्थानान्तरित हो जानेपर माधवीनाथने पोस्ट मास्टर बाबूसे कहा—"आपके पास एक बातकी जाँच करनेके लिये आया हूँ।"

पोस्ट मास्टर बाबू मन-ही-मन हँसे। वह बङ्गालके ही रहने वाले थे—विक्रमपुरके। और बातोंमें चाहे जितने बेवकूफ हों, अपने हितकी बात समझनेमें बड़े कुशाग्रबुद्धि हैं। समझ गये कि बाबू किसी बातकी खोजमें आये हैं। बोले, 'क्या बात, महाशय?'

माधवी०—ब्रह्मानन्दको आप पहचानते हैं?

पोस्ट०—नहीं पहचानता—हाँ कुछ—नहीं पहचानता।

माधवीनाथ समझ गये कि अवतार अपनी निजमूर्त्ति धारण करना चाहता है। बोले—आपके डाकखानेमें ब्रह्मानन्द घोषके नामकी कोई चिट्ठी आया करती है?"

पोस्ट०—आपसे ब्रह्मानन्द घोषकी मुलाकात नहीं है?

माधवी०—हो या न हो। मैं आपसे पूछने आया हूँ।

इसपर पोस्ट मास्टर बाबूको अपने उच्चपद और डिपुटीगिरीकी शानकी याद आ गयी; अतः जरा नाक-भौंह सिकोड़कर बनावटी रुष्टभावसे बोले,—"हम लोगोंको डाकघरकी खबर बताना मना है।" यह कहकर पोस्ट मास्टर बाबू चुपचाप चिट्ठी तौलने लगे।

माधवीनाथ मन-ही-मन हँसने लगे। प्रकट रूपमें बोले,—"ए बाबू! मैं जानता हूँ, तुम लोग ऐसी ही बातें किया करते हो—इसी लिये साथमें कुछ लेकर चला हूँ और देकर जाऊँगा। अब मैं जो-जो पूछता हूँ, ठीक-ठीक बताओ तो सही!"

इसपर पोस्ट बाबू प्रसन्नवदन हो खीसें निकालकर बोले,—"क्या, कहिये?"

माधवी—यही कि ब्रह्मानन्दके नाम की कोई चिट्ठी डाकखानेमें आया करती है ?

पोस्ट—हाँ, आती है।

माधवी—कितने दिनोंके अन्तरपर ?

पोस्ट—जो बात बतला दी है, उसका अभी तक रुपया नहीं मिला। पहले उसका रुपया निकालिये, तब दूसरी नयी बात पूछिये।

माधवीनाथकी इच्छा थी कि पोस्ट मास्टरको कुछ देंगे। लेकिन उसके चरित्र से वह बहुत नाराज हो गये। बोले—"बाबू ! तुम शायद परदेशी जान पड़ते हो—मुझे पहचानते हो ?"

पोस्ट मास्टर ने माथा हिलाते हुए कहा,—"नहीं; लेकिन आप चाहे कोई भी क्यों न हों—हम लोग क्या पोस्ट आफिस की खबर इससे-उससे कहते फिरते हैं ? कौन हो तुम ?"

माधवी—मेरा नाम माधवीनाथ सरकार है—घर राजग्राम। मेरे हाथ में कितने लठैत रहते हैं, जानते हो ?

पोस्टबाबू भयभीत हुए। माधवीनाथ बाबू का नाम और दुर्दण्ड प्रताप सुन चुके हैं। पोस्टबाबू सन्न रह गये।

माधवीनाथ कहने लगे,—"मैं तुमसे जो पूछूँ, सच-सच बताओ। खबरदार, कुछ छिपाना नहीं। यदि छिपाओगे, तो एक पैसा भी न दूँगा और यदि बिलकुल बताना न चाहोगे, तो याद रखो, तुम्हारे घर में आग लगवा दूँगा,—"तुम्हारा डाकखाना लुटवा दूँगा, इधर अदालत में यह प्रमाणित कर दूँगा, कि तुमने स्वयं अपने आदमियों से डाकखाना लुटवा लिया है। बोलो, अब बताओगे ?"

पोस्टबाबू को तो जूड़ी बुखार आ गया—थर-थर-थर काँपने लगे। बोले,—"आप नाराज क्यों होते हैं? मैं तो आपको पहचानता न था; ऐसा गैर ही समझ कर मैंने वैसी बात कही थी। जब आप आये हैं, तो जो कुछ आप पूछेंगे, मैं साफ-साफ बताऊँगा।"

मा०—कितने दिनों के अन्तर से ब्रह्मानन्द की चिट्ठियाँ आया करती हैं?

पो०—प्रायः एक-एक महीने पर—फिर भी; कोई निश्चित नहीं।

मा०—तो क्या रजिस्ट्री से आती है?

पो०—हाँ, प्रायः अनेक चिट्ठियाँ रजिस्ट्री से ही आती हैं।

मा०—किस आफिस से रजिस्टर्ड होकर आती हैं?

पो०—यह तो याद नहीं है।

माधवी०—तुम्हारे आफिस में एक रसीद क्या नहीं रहती?

पोस्टमास्टर ने रसीद खोजकर बाहर की। एक को पढ़कर बताया,—"प्रसादपुर।"

"प्रसादपुर किस जिले में है? तुम्हारी लिस्ट देखें।"

पोस्टमास्टर ने काँपते-काँपते छपी हुई लिस्ट देखकर बताया, "यशोहर।"

मा०—तब देखो और कहाँ-कहाँ से उसके नाम रजिस्ट्री चिट्ठी आती है? सारी रसीदें देखो।

पोस्टबाबू ने देखा। आजकल जितने पत्र आते हैं, सब प्रसाद-

पुर से ही आते हैं। माधवीनाथ ने पोस्टमास्टर बाबू के हाथ में दस रुपये का एक नोट पकड़ा दिया, और विदा हुए। उस समय तक भी हरिदासबाबा का हुक्का तैयार हुआ न था। माधवीनाथ हरिदास के लिये भी एक रुपया रख गये। शायद यह कहना न होगा कि पोस्टबाबू ने उसे भी आत्मसात किया।

चौथा परिच्छेद

माधवीनाथ हँसते हुए लौट आये। माधवीनाथ ने गोविन्द-लाल और रोहिणी के अधःपतन की कहानी अन्य लोगों के मुँह से भी सुनी। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि गोविन्द-लाल और रोहिणी दोनों ही एक साथ गुप्त रूप से रह रहे हैं। ब्रह्मानन्दकी अवस्था से वह विशेष अवगत थे—जानते थे कि रोहिणी के अतिरिक्त उसके और कोई नहीं है। अतएव जब उन्हें मालूम हुआ कि ब्रह्मानन्द के नाम हर महीना-महीना रजिस्ट्री आ रही है, तो वे समझ गये कि या तो रोहिणी या गोविन्दलाल उसे महीने-महीने खर्च भेजते हैं, प्रसादपुर से चिट्ठी आती है, अतएव दोनों ही प्रसादपुर में अथवा उसके समीप किसी जगह अवश्य रहते होंगे। लेकिन निश्चय को दृढ़ निश्चय में परिणत करने के लिये कन्यालय में लौट कर थाने में एक आदमी भेजा। सब-इन्सपेक्टर को लिख भेजा—एक कांस्टेबुल को भेज दीजिये। आशा है, कुछ चोरी का माल पकड़ा दूँगा।

सब-इन्सपेक्टर माधवीनाथ को खूब पहचानते थे—भय भी करते थे—पत्र पाने के साथ उन्होंने निद्रासिंह नामक एक कांस्टेबल को भेज दिया। माधवीनाथ ने निन्द्रासिंह के हाथ में दो रुपये रख कर बोले,—"देखो भाई! कुछ इधर-उधर न करना जो कहता हूँ, वही करो। इस सामने के पेड़ के पास जाकर छिप रहो; लेकिन पेड़ के नीचे इस तरह खड़े रहो कि यहाँ से दिखाई दे। और कुछ न करना होगा।" निद्रासिंह राजी होकर विदा हुआ। इसके बाद माधवीनाथ ने ब्रह्मानन्द को बुला भेजा। ब्रह्मानन्द आकर पास में बैठ गये। उस समय वहाँ और कोई न था।

परस्पर आगत-स्वागत के बाद माधवीनाथ ने कहा,—"आप मेरे समधी साहब के बड़े निकट के जन हैं। इस समय उनका कोई नहीं है—मेरा दामाद भी विदेश में है। आपपर कोई आपद्-विपद् आने पर मुझे ही देखना—सम्भालना पड़ेगा—इसीलिये आपको बुलवाया है।"

ब्रह्मानन्द का मुँह तो सूख गया। बोले,—'कैसी विपद्, महाशय!" माधवीनाथ ने कुछ और गम्भीर होकर कहा,—"आपपर कुछ विपद् आ गयी है।"

ब्र०—विपद्! कैसी विपद्?

मा०—केवल, विपद् ही नहीं; विपद् समूह। पुलिस ने किसी प्रकार मालूम कर लिया है कि निश्चय ही आपके पास एक नोट ऐसा है, जो चोरी का है।

ब्रह्मानन्द तो आकाश से गिरे—"यह क्या? मेरे पास चोरी का नोट?"

माधवी—तुम्हारी जानकारी में नहीं हो सकता। शायद किसी दूसरे ने तुम्हें दिया हो और तुमने उसे अपने पास रखा हो।

ब्र०—यह महाशय क्या कहते हैं? मुझे कौन नोट देगा?

माधवीनाथ ने तब कुछ धीमी आवाज से कहा,—"मैं सब जान गया हूँ—पुलिस भी जान गयी है। सच पूछिये तो पुलिस से ही मुझे यह सारी बातें मालूम हुई हैं। चोरी का नोट प्रसादपुर से आया है। वह देखो, एक पुलिस कांस्टेबल तुम्हारे लिये आकर खड़ा है। मैंने उसकी कुछ पूजा कर दी है, इसलिये वह ठहर गया है।"

यह कहते हुए माधवीनाथ ने रूलधारी गलगुच्छेदार दाढ़ी से सुशोभित भयानक सर्प सदृश उस कांस्टेबल की कान्तमूर्त्ति के दर्शन कराये।

ब्रह्मानन्द बेंत की तरह कांप उठे। माधवीनाथ के पैर पकड़कर रोकर बोले,—"आप मेरी रक्षा कीजिये।"

मा०—डरो मत। बताओ तो इस बार प्रसादपुर से किस-किस नम्बर के नोट आये हैं? पुलिसवालोंने मेरे पास नोट के नम्बर लिखा दिये हैं। यदि वह नम्बर तुम्हारे पास के नोटों का न हो, तो डर काहेका है? नम्बर बदलने में कितनी देर लगती है? इस बारका प्रसादपुर का पत्र ले तो आओ, देखें! नोटका नम्बर मिलावें।

लेकिन ब्रह्मानन्द जायँ कैसे ? डर लगता है—पेड़के नीचे कांस्टेबल खड़ा है।

माधवीनाथ ने कहा,—"कोई डर नहीं। मैं अपना आदमी साथ में देता हूँ।" "माधवीनाथ के आदेशानुसार एक दरवान ब्रह्मानन्द के साथ गया। ब्रह्मानन्द रोहिणी का पत्र ले आये। उस पत्र से जो-जो बातें माधवीनाथ जानना चाहते थे, सब उन्हें मालूम हो गयीं।

माधवीनाथ ने पत्र पढ़कर ब्रह्मानन्द को लौटाकर कहा,—"इस नम्बर के नोट नहीं हैं। कोई डर नहीं है—तुम घर जाओ। मैं कांस्टेबल को विदा कर देता हूँ।"

ब्रह्मानन्द के मरे हुए शरीर में प्राण आया। एक सांस में वह वहाँ से दौड़कर भागे।

माधवीनाथ चिकित्सा कराने के लिए कन्याको अपने घर ले गये। उसकी चिकित्सा के लिये उपयुक्त चिकित्सक नियुक्त कर स्वयं वह कलकत्ते के लिये चल पड़े। भ्रमर ने बहुत आपत्ति की लेकिन उन्होंने एक न सुना। "शीघ्र ही लौटूँगा।" कहकर कन्याको प्रबोध दे गये।

कलकत्ते में निशाकरदास नाम के एक बड़े ही अन्तरंग मित्र माधवीनाथ के थे। निशाकर माधवीनाथ की अपेक्षा दस-बारह वर्ष कम उम्रके थे। निशाकर कुछ काम नहीं करते—पैतृक सम्पत्ति है—केवल कुछ-कुछ गीतवाद्य में लगे रहते हैं। माधवीनाथ ने आकर उनसे मुलाकात की। अन्यान्य बातोंके बाद निशाकरसे

उन्होंने पूछा,—"क्यों भाई ! थोड़ा घूमने-घामने न चलोगे ?"

निशा०—कहां ?

मा०—यशोहर।

निशा०—वहां क्या है ?

मा०—नीलकी कोठी खरीदना है।

निशा०—चलो।

तब आवश्यक वस्तुओंका संग्रह कर दोनों ही मित्र दूसरे ही दिन यशोहरके लिए चल पड़े। वहांसे वह लोग प्रसादपुर जायेंगे।

पांचवां परिच्छेद

देखो, धीरे-धीरे शीर्ण शरीरा चित्रा नदी वह रही है। किनारे पर अश्वत्थ; कदम्ब; आम और खजूर आदिके पेड़ोंसे शोभित उपवनमें कोयल कूक रही है। प्रसादपुर नामका एक छोटा बाजार यहांसे कोई एक कोस दूर है।

अबसे बहुत पहलेकी बात है। यहां मनुष्य समागम न देखकर पापाचारके ख्यालसे ही एक गोरे नीलकर साहबने यहां नील कोठी बनवाई थी। इस समय नीलकर और उसके ऐश्वर्यका ध्वंस हो गया है। उसके अमीन, नायब, तकाजगीर, गुमारते अपनी-अपनी जगह पर अपने कर्मका फल भोग कर रहे हैं। एक बङ्गालीने इस जन शून्यस्थित कोठी को खरीद कर उसे फिर सुसज्जित किया

है। फूल, पत्थरकी आदमकद पुतलियां, कालीन, गलीचे, चित्र, आईने आदिसे उसे चित्रित कर दिया है। उस मकानके दूसरे मंजिलके एक बड़े कमरेमें हम प्रवेश करते हैं। कमरेमें कितने ही स्मरणीय चित्र हैं—लेकिन उनमें कितने कुरुचिभाव पूर्ण हैं—उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। निर्मल सुकोमल फर्श पर एक गलगुच्छेदार मुसलमान एक तानपूरा लिये हुए उसके कानोंको ऐंठ कर तारका स्वर मिला रहा है। पासमें ही बैठी एक युवती तबलेको गुम-गुम आवाजसे गुमका रही है। इसके साथ ही उस सुंदरीके हाथके स्वर्ण अलंकार झनकार मार रहे हैं। बगलके एक बड़े आईनेमें उन दोनों की तद्रूप मूर्त्ति प्रतिफलित हो रही थी। पासके ही एक कमरेमें बैठा हुआ एक बंगाली युवक एक उपन्यास पढ़ रहा था और बीच-बीचमें खुले दरवाजेसे उन दोनोंके कार्य-कलाप भी देखता जाता था।

तानपूरेकी खूँटी ऐंठता हुआ वह दाढ़ीवाला तारों पर झनकार करता जाता था। जब उस्तादजीकी विवेचनामें तारोंका मिऊँ-मिऊँ और तबलेका खन-खन आवाज एक हो गया, तो उस मूँछ दाढ़ीके अन्धकारमें कितने ही दूध जैसे दांत खिल उठे। इसके बाद ही उस्तादजीने अपना वृषभ तुल्यरव उत्थित किया। आवाज निकालनेके बाद उस्तादजीके दांत इस तरह चित्र-विचित्र ढङ्गसे दिखाई देने लगे, जैसे बन्दर विविध ढङ्गसे अपने दन्त प्रदर्शन करते हैं। इसी समय उस युवतीका मधुर कण्ठ भी शुरू हुआ और दोनों ही स्वर मिलकर मानो सुनहली-रुपहली धाराके रूपमें परिणत हो गये।

इच्छा तो होती है कि यहीं यवनिका पतन कर दिया जाय। जो आपत्तिक है, अदर्शनीय है, इसे हमें दिखाने की इच्छा नहीं— जिसके विना कहे वन नहीं सकता वही कहूँगा। फिर भी, वह अशोक, वकुल, कुटज, कुरवक-कुंज के बीच भ्रमरगुंजन, कोकिल-कूजन, वह क्षुद्र नदी, जूही मल्लिका, मालती और पुष्पों का सौरभ, तरंगों पर नाचनेवाले राजहंसों का कलनाद, उस कमरे में नीले शीशे से आने वाली रोशनी की अपूर्व माधुरी, उस रजत स्फटिक निर्मित गुलदान में पुष्पों की शोभा गृह की शोभा वढ़ानेवाले सुविन्यस्त द्रव्यों का विचित्र उज्ज्वल वर्ण और उस गायनाचार्य के विशुद्ध स्वरसप्तक की सृष्टि आदि का क्षणिक उल्लेख कर दिया गया है। कारण, जो युवक अब मनोनिवेश पूर्वक युवती के चंचल कटाक्षों का-निरीक्षण कर रहा है, उसके हृदय में इस कटाक्ष के माधुर्य से ही इन वस्तुओं की शोभा वढ़ रही है।

यही युवक गोविन्दलाल है और यही युवती रोहिणी। इस मकान को गोविन्दलाल ने ही खरीदा है। यहीं यह लोग स्थायी रूप से रहते हैं।

एकाएक रोहिणी का तवला वेसुरा हो गया। उस्तादजी के तानपूरे का तार टूट गया। उनका गला भर्रा गया। गाना वन्द हुआ, गोविन्दलाल के हाथ का उपन्यास गिर पड़ा। इसी समय उस प्रमोद गृह के दरवाजे पर एक अपरिचित युवक ने प्रवेश किया। हम लोग उस युवक को पहचानते हैं—उसका नाम निशाकरदास है।

——:o:——

छठा परिच्छेद

दो मंजिले मकान के ऊपरी हिस्से में एक कमरे में रोहिणी रहती है—यहाँ वह हाफ पर्दानसीन है। नीचे की मंजिल में नौकर-चाकर रहते हैं। इस एकान्त स्थान में गोविन्दलाल से मिलने के लिये कभी कोई नहीं आता। अतएव वहाँ मर्दाना, जनाना की कोई जरूरत न थी। यदि इस अवसरपर कोई इन भले आदमी के बदले कोई दूकानदार या ऐसा ही अन्य कोई मिलने आता तो गोविन्दलाल उससे मुलाकात करने के लिये नीचे आ जाते। अतएव बाबू के बैठने के लिये नीचे भी एक कमरा निर्दिष्ट था।

नीचे की मंजिल के दरवाजे पर निशाकरदासने आवाज लगायी—"कौन है यहाँ?"

गोविन्दलाल के रूपा-सोना नाम के दो नौकर हैं। आवाज लगाते ही दोनों दरवाजे पर आकर निशाकरदास को देखकर विस्मित हुए। निशाकरदास देखते ही विशेष भले आदमी दिखाई दिये—निशाकर भी जरा खूब बन-ठनकर गये थे। इस तरह का कोई भी आदमी उस दरवाजे पर आया न था। अतः उन्हें देखकर दोनों ही नौकर एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे।

सोनाने पूछा,—"आप किसे खोजते हैं?"

निशा०—तुम्हीं लोगों को। बाबू को खबर करो कि एक भले आदमी मिलने आये हैं।

सोना०—क्या नाम बताऊंगा?

निशा०—नामकी क्या जरूरत है, कह दो एक भले आदमी हैं।

नौकर तो जानते थे कि बाबू किसो भले आदमीसे मुलाकात नहीं करते—अतः मुलाकातकी सम्भावना ही न थी। नौकरोंने यही सोचकर खबर देनेमें उत्सुकता न दिखायी। सोना जरा इधर-उधर करने लगा। रूपा बोला,—"आप व्यर्थ आये हैं—बाबू किसीसे मुलाकात नहीं करते।"

निशा०—तब तुम लोग रहने दो, मैं बिना खबरके ही ऊपर जाता हूँ।

नौकर बड़ी विपद्में पड़े। बोले,—"नहीं, महाशय! हम लोगों की नौकरी चली जायगी।"

इसपर निशाकरने एक रुपया निकालकर कहा,—"जो खबर करेगा, यह रुपया उसीका होगा।"

सोना विचार करने लगा—इतनेमें ही रूपा चीलकी तरह झपट्टा मारकर हाथसे रुपया लेकर ऊपर खबर करने चला गया।

मकानके चारों ओर जो बगीचा है, वह बहुत ही मनोरम है। निशाकरने सोनासे कहा—"मैं इसी बागमें टहलता हूँ—आपत्ति न करना—जब वह आयें, तो यहांसे मुझे बुला लेना।" यह कहकर निशाकरने सोनाके हाथमें एक रुपया और दिया।

इधर रूपा जिस समय बाबूके पास पहुँचा, वे किसी काममें—बड़े अनवरतवरमें थे—अतः वह निशाकरकी कोई खबर उन्हें दे न सका। इधर बगीचामें घूमते हुए निशाकरने एक बार ऊपर निगाह

कर देखा कि खिड़कीसे एक परमा सुन्दरी युवती उन्हें खड़ी निहार रही है।

रोहिणी निशाकरको देखकर सोच रही थी,—"यह कौन है? देखनेसे तो जान पड़ता है कि यह इस देशका आदमी नहीं है। चेहरेसे तो कोई धनी आदमी जान पड़ता है। देखनेमें भी सुंदर है—गोविन्दलालकी अपेक्षा? नहीं, ऐसा नहीं है। गोविंदलालका रंग खुलता है—

लेकिन इसका चेहरा और इसकी आँखें बड़ी सुन्दर हैं। विशेषतः आँखें—आह भरी! क्या आँखें हैं? यह कहाँसे आया? हरिद्राग्राम का तो कोई नहीं है? वहांके तो हरेक आदमीको पहचानती हूँ। क्या उसके साथ दो बातें हो नहीं सकतीं? हानि क्या है—मैं गोविन्दलालके प्रति कभी विश्वासघातिनी तो हो ही नहीं सकती?"

रोहिणी यह सोच रही थी कि निशाकरने ऊपर देखा और आँखें चार हो गयीं। आँखों-आँखोंमें कोई बात हुई या नहीं, मैं नहीं कह सकता—जान सकनेपर भी कहनेकी इच्छा नहीं है—लेकिन यह जानते हैं कि इस तरह बातें हुआ करती हैं।

ऐसे समय रूपाने बाबूको खाली देखकर आगन्तुक बाबूका सन्देश दिया। बोला—एक भले आदमी मुलाकातके लिये आये हैं। बाबूने पूछा,—"कहांसे आये हैं?"

रूपा—यह नहीं मालूम।

बाबू०—तो बिना पूछे खबर क्यों देने आया?

रूपा ने देखा कि वेवकूफ वनना पड़ता है, तो तुरत उपस्थित बुद्धि की सहायता से बोला,—"यह पूछा था, तो उन्होंने कहा, बाबू से बतायेंगे।"

बाबू ने कहा—तो जाकर कह दे कि मुलकात न होगी।

* * * *

इधर विलम्ब देखकर निशाकर समझ गये कि शायद गोविन्द-लाल ने मिलने से इनकार कर दिया है। लेकिन दुराचारी के साथ भलमनसाहत क्यों की जाय? मैं क्यों न स्वयं ऊपर चला जाऊँ?

यह विचार कर नौकर के लौटने के पहले ही, उसकी प्रतीक्षा किये विना निशाकर ने मकान में प्रवेश किया। उन्होंने देखा कि सोना, रूपा कोई भी नीचे नहीं है। इस तरह वह निरुद्वेग हो सीढ़ी चढ़कर, जिस जगह गोविन्दलाल, रोहिणी और दानिश खाँ थे, वहाँ पहुँच गये। रूपाने उन्हें दिखाकर कहा,—"यह बाबू मुलकात करना चाहते थे।"

गोविन्दलाल वड़े नाराज हुए। लेकिन उन्होंने देखा कि भले आदमी हैं। उन्होंने पूछा—

"आपका परिचय?"

नि०—मेरा नाम रासविहारी दे है।

गो०—निवास?

मि०—वराहनगर।

यह कहते हुए निशाकरदास जमकर वैठ गये। क्योंकि वह समझ गये थे कि वैठने के लिये कभी कह नहीं सकते।

गो०—आप किससे मिलना चाहते हैं ?

नि०—आपसे ।

गो०—यदि बलपूर्वक मेरे घर में घुस न आते, तो नौकर से आपको खबर मिलती कि मुझे फुरसत नहीं है ।

नि०—लेकिन अवकाश तो खूब देख रहा हूँ । डर या धमकी से यदि उठ जाना होता, तो विना बुलाये आप के पास कभी न आता । जब मैं आ गया हूं तो मेरी कुछ बातें सुन लेने से ही मैं सन्तुष्ट होकर चला जाऊँगा ।

गो०—मेरी तो यही इच्छा है कि न सुनूँ । फिर भी, यदि दो बातों में समाप्त कर सकें, तो कहकर चले जायँ ।

नि०—दो बातों में ही कहूंगा । आपकी स्त्री भ्रमरदासी अपनी सम्पत्ति का दानपत्र किया चाहती हैं ।

इसी समय दानिश खाँ ने अपने तानपूरा का एक टूटा तार चढ़ाया । उसने एक हाथ से तार चढ़ाते हुए दूसरे हाथ की उंगली पर गिनकर कहा,—"एक बात हुई ।"

नि०—"मैं वह दान-पत्र लूँगा ।" दानिश ने उँगली पर गिन कर कहा,—"दो बातें हुईं ।"

नि०—इसीलिये मैं आपके हरिद्राग्राम के मकान पर भी गया था ।

दानिश खाँ ने कहा,—"दो बात छोड़कर तीन बातें हुईं ।"

नि०—उस्ताद जी, सूअर ! चुप रहो ।

उस्तादजी ने लाल आँखेंकर गोविन्दलाल से कहा,—"बाबू साहब ! इस बदतमीज आदमी को विदा कीजिये।"

लेकिन बाबू साहब उस समय अन्यमनस्क हो रहे थे, इसलिये कुछ न बोले।

निशाकर ने फिर कहना शुरू किया,—"आपकी पत्नी मुझे दान-पत्र करने के लिये तैयार है, लेकिन आपकी अनुमति की अपेक्षा है, वह आपका पता भी नहीं जानतीं, पत्रादि भी लिखना नहीं चाहतीं। अतएव आपकी सम्मति जानने का भार भी मुझपर ही पड़ा। मैंने बड़े मुश्किल से आपका पता लगाया है और अब आपकी अनुमति चाहता हूँ।

गोविन्दलाल ने कोई उत्तर न दिया—बहुत अन्यमनस्क हो गये। बहुत दिनों के बाद भ्रमर का हाल मिला है।—उनकी वही-भ्रमर ! प्रायः दो वर्ष हो गये।

निशाकर भी बहुत कुछ समझ गये। उन्होंने फिर कहा,—"यदि आपकी सहमति हो, तो एक लाइन लिख दीजिये कि आपको कोई आपत्ति नहीं है। इतना होने से ही मैं चला जाऊँगा।"

लेकिन गोविन्दलाल ने कोई उत्तर न दिया। निशाकर समझ गये कि फिर कहना पड़ेगा। उन्होंने फिर सारी बातें समझाके कहीं। एक बार चित्त संयतकर गोविन्दलाल ने सारी बातें सुनीं। पाठक तो समझ गये होंगे कि निशाकर की सारी बातें झूठी हैं। लेकिन गोविन्दलाल ने ऐसा न समझा। पहले का उग्र भाव त्याग करके बोले,—

"मेरी अनुमति अनावश्यक है। सम्पत्ति मेरी स्त्री की है; मेरी नहीं। शायद यह आप जानते होंगे। उनकी जिसे इच्छा हो दान करें। मेरा अपना कोई निषेध नहीं है। मैं कुछ न लिखूँगा। शायद अब आप मुझे छुट्टी देंगे।"

काम समाप्त हुआ देखकर निशाकर को विदा होना ही पड़ा। वह वहाँ से उठकर नीचे चले आये। निशाकर के चले जाने पर गोविन्दलाल ने दानिश खाँ से कहा,—"कुछ गाओ।"

दानिश खाँ ने प्रभु की आज्ञा से फिर तानपूरा उठाया और स्वर मिलाकर पूछा—"क्या गाऊँ?"

"जो इच्छा हो!" कहकर गोविन्दलाल ने तबला उठाया। गोविन्दलाल पहले भी कुछ-कुछ बजाना जानते थे, इस समय तो बहुत अच्छा बजाना सीख गये हैं। लेकिन आज वह दानिशखाँ का साथ दे न सके। ताल से बेताल होने लगे। दानिशखाँ ने विरक्त होकर तानपूरा रख कर कहा,-आज मैं बहुत थक गया हूँ।" इसके बाद गोविन्दलाल ने एक सितार लेकर बजाना चाहा, लेकिन उस समय सारी गतें माथे से विलुप्त हो गयी थीं। सितार छोड़कर उन्होंने फिर उपन्यास पढ़ना शुरू किया। लेकिन वह जो पढ़ते थे, उसका अर्थ ही न समझते थे। इसपर किताब भी फेंककर गोविन्दलाल ने शयन कक्ष में प्रवेश किया। रोहिणी को तो उन्होंने वहाँ नहीं पाया, लेकिन सोना नौकर वहाँ था, दरवाजे पर से गोविन्दलाल ने सोना से कहा-"मैं सोना चाहता हूँ, ख्याल रखो, जब तक मैं स्वयं सोकर न उठूँ तब तक मुझे कोई जगाने न पाये।'

यह कहकर गोविन्दलालने सोनेवाले कमरेका दरवाजा बन्द कर लिया। उस समय प्रायः सन्ध्या हो चुकी थी।

दरवाजा बन्द करके भी गोविन्दलाल सो न सके। पलंग पर बैठकर दोनों हाथोंसे मुँह ढँक कर रोने लगे।

नहीं कह सकते कि वह क्यों रो रहे थे। भ्रमरके लिये रो रहे थे; या अपने लिये रो रहे थे यह कौन जाने? शायद दोनोंके लिये।

हम तो, गोविन्दलालको रोनेके अतिरिक्त और कोई उपाय है, यह नहीं देखते। भ्रमरके लिये रोनेकी गुंजाइश है। लेकिन भ्रमर के पास लौट जानेका कोई रास्ता नहीं है। हरिद्राग्राममें फिर मुँह दिखानेकी बात नहीं है। हरिद्राग्रामकी राहमें कांटे बिछे हुए हैं। रोनेके सिवा और उपाय ही क्या है?

सातवां परिच्छेद

जिस समय निशाकरको आकर बड़े हालमें बैठना पड़ा, उस समय बाध्य होकर रोहिणीको बगलवाले कमरेमें चला जाना पड़ा। लेकिन केवल आँखोंकी ओट होनेके लिये—श्रवण शक्तिसे दूर होनेके लिये नहीं। उसने, उन लोगोंके बीच जो बातें हुईं, सब कान लगाकर सुना। इतना ही नहीं; बल्कि परदा हटाकर निशाकरको झांककर देखने भी लगी। निशाकरने भी देखा कि परदेकी आड़से दो परवलकी फाँक जैसी आँखें झाँक रही हैं।

रोहिणीने सुना कि निशाकर या रासबिहारी हरिद्राग्रामसे आ रहे हैं। रूपा नौकर भी रोहिणीकी तरह खड़ा होकर सारी बातें

सुनता रहा। निशाकरके उठकर जाते ही रोहिणीने रूपाको उँगली के इशारेसे अपने पास बुलाया। रूपाके पहुँचनेपर उससे कानमें कहा,—"जो कहूँ, वह कर सकेगा? बाबूसे सारी बातें छिपानी होंगी। जो कुछ करेगा, उसे यदि बाबू जान न पायेंगे तो तुझे पाँच रुपये इनाम दूँगी।"

रूपाने सोचा, नहीं मालूम आज किसका मुँह देखकर उठा हूँ। आज देखता हूँ कि रुपये बरस पड़े हैं। गरीब हैं, दो पैसे मिल जायें तो इससे बढ़कर क्या है? प्रकट रूपमें बोला,—"जो कहेंगी, मैं वैसा ही करूँगा। कहिये, क्या आज्ञा है?"

रो०—इस बाबूके साथ तू भी बाहर चला जा। वह मेरे पिताके गाँवसे आये हैं। वहाँका मैं कभी कोई संवाद नहीं पाती और इसके लिये बहुत रोती हूँ। जब देशका एक आदमी आ गया है, तो उससे घरका हाल-चाल पूछूँगी। बाबूने तो उसे क्रोध करके भगा दिया है। तू जाकर उन्हें बैठा। ऐसी जगह बैठाइयो, कि बाबू नीचे जाकर भी उसे देखने न पायें। मैं जरा फुरसत पाते ही जाऊँगी। अगर बैठना न चाहें; तो विनय-विनती करना।

रूपाको तो इनामकी गन्ध मिल गयी, वह बहुत अच्छा कहकर चल दिया।

नहीं जानते कि निशाकर किसलिये गोविन्दलालको छलनेके लिये आये हैं; लेकिन नीचे आनेपर वह जिस तरहका आचरण दिखा रहे थे, बुद्धिमान लोग उसे अच्छा न कहेंगे। वह गृहके प्रवेश

द्वारका दरवाजा, सिटकनी, कब्जा आदि देख रहे थे। इसी समय रूपा नौकर आ पहुँचा।

रूपाने कहा,—"तम्बाकू पीने की इच्छा है, बाबू जी !"

निशा०—बाबू ने तो पूछा नहीं, नौकर से तमाखू लूँ क्या ?

रूपा०—नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं। जरा पोशीदा बात है—एकान्त में आइये।

रूपा निशाकर को लेकर अपने निर्जन कमरे में पहुँचा। निशाकर भी बिना आपत्ति के चले गये। निशाकर को बैठाकर उसने रोहिणी की सारी बातें उनसे कह दीं।

निशाकर ने तो हाथ बढ़ाकर आकाश का चन्द्रमा पाया। अपनी इच्छापूर्त्ति का अति सहज उपाय उन्हें देख पड़ा। बोले—"भाई ! तुम्हारे मालिक ने तो मुझे भगा दिया, मैं उनके घरमें छिपकर कैसे रहूँ ?"

रूपा०—नहीं, वह कुछ भी जानने न पायेंगे। इस कमरे में वह कभी नहीं आते।

निशा०—न आयें; लेकिन जब तुम्हारी माँजी यहाँ आयेंगी, तो बाबू सोचेंगे, देखें कहाँ गयी। यदि यही सोचकर पीछे-पीछे आयें, या किसी तरह मेरे पास तुम्हारी मांजी को देख पायेंगे, तो बता तो सही, मेरी क्या दशा होगी ?

रूपा चुप हो रहा। निशाकर कहने लगे,—"देखो, भाई ! इस घर के भीतर और इस कमरे में बन्द कर यदि मेरा खूनकर बगीचे में गाड़ भी दोगे, तो न मेरे माँ है, न बाप, कोई क्या

तुम्हारा कर लेगा ? तब तो तुम भी हमें दो लाठी मारने से न चुकोगे। इसलिये ऐसे काम में मैं न पड़ूँगा। अपनी माँजी से समझा कर कह दो कि यह मुझसे न होगा। हाँ, एक बात और कहना। उनके बूढ़े चाचा ने हमसे कई जरूरी बातें कहने के लिए कहा है। मैं वह सन्देशा तुम्हारी माँजी से कहने के लिये बहुत व्याकुल हूँ। लेकिन तुम्हारे बाबू ने मुझे भगा दिया। मैं कह न सका। अब मैं जाता हूँ।"

रूपा ने देखा कि हाथ से पाँच रुपये जाया चाहते हैं। वह बोला,—"अच्छा, अगर यहाँ न बैठ सकें, तो बाहर कहीं दूसरी जगह बैठ सकते हैं ?"

निशा०—मैं भी यही बात सोच रहा था। आने के समय तुम्हारी कोठी के पास ही नदी के किनारे एक पक्का घाट है, उसके पास दो बकुल के वृक्ष हैं; मैं देख आया हूँ। वह जगह पहचानते हो ?

रूपा—हाँ, मजे में पहचानता हूँ।

निशा०—मैं जाकर वहीं बैठता हूँ। संध्या हुई है—रात हो जाने पर वहाँ बैठने से कोई देख पहचान न सकेगा। यदि तुम्हारी माँजी वहाँ आ सकें, तो सारी बातें वह मुझसे सुन सकेंगी। यदि ऐसी-वैसी कोई बात देखूँगा भी, तो भागकर जान तो बचा सकूँगा। घर में बन्द कर कुत्तों की मौत मरना मुझे पसन्द नहीं।

आखिर रूपा नौकर ने रोहिणी के पास जाकर निशाकर ने जैसा कहा था, वह सब सुना दिया। इस समय रोहिणी के मनका भाव क्या है, यह मैं नहीं बता सकता। जब मनुष्य स्वयं अपने

मनकी बात समझ नहीं सकता—तो मैं कैसे बता सकता हूँ कि रोहिणी के मन में क्या बात है—वह क्या सोच रही है। रोहिणी ब्रह्मानन्द को इतना मानती है कि उसका हाल जानने के लिये वह हिताहित ज्ञान-शून्य हो जायगी, ऐसी बात तो मैं मान नहीं सकता। मैं समझता हूँ कि भीतर और कुछ है। कुछ आँखों-आँखों में बातें हो गयी थीं। रोहिणी ने देखा कि निशाकर रूपवान है—परवल के फाँक जैसी आँखें हैं। रोहिणी ने देख लिया था कि मनुष्यों में निशाकर एक मनुष्य प्रधान है। रोहिणी के मन में यह विश्वास था कि मैं गोविन्दलाल के प्रति विश्वासघातिनी न हूँगी। लेकिन विश्वासघात एक बात है—और यह दूसरी बात। शायद उस महापापिष्ठाने मन में यह सोचा था,—"असावधान मृग पाकर कौन ऐसा शिकारी होगा जो उस अवसर से लाभ न उठायेगा।" उसने सोचा कि कौन ऐसी नारी होगी जो विजित पुरुष को देख कर उस पर विजयी न बनेगी? बाघ गो-हत्या करता है—लेकिन सब गौ को तो खाता नहीं। स्त्री-पुरुष को जय करती है—केवल जय-पताका उड़ाने के लिये। अनेक लोग मछली पकड़ते हैं—खाने के लिये नहीं—शिकार-लिप्सा पूरी करने के लिये। नहीं जानती, उसमें क्या रस है—क्या आनंद है। रोहिणी ने सोचा कि यह आयत लोचन मृग जब प्रसाद-पुर-कानन में आ गया है, तो क्यों न उसे शरविद्ध करके छोड़ूँ? नहीं जानता कि इस पापिनी के पाप-हृदय में क्या भावना है—लेकिन रोहिणीने स्वीकार कर लिया कि हलका अंधेरा होते ही वह उनसे उसी जगह मुलाकात करेगी और अपने वृद्ध चाचाका समाचार सुनेगी।

रूपा ने आकर यह वात निशाकर से कह दी। यह सुनकर प्रसन्न वदन हो निशाकर वहाँ से उठकर चल दिये।

—:❀:—

आठवाँ परिच्छेद

रूपा के चले जाने पर निशाकर ने सोना को बुलाकर कहा,—"तुम लोग वावू के यहाँ कितने दिनों से नौकरी करते हो?"

सोना—यही जितने दिनों से वावू यहाँ आये हैं, उतने ही दिनों से नौकर हैं।

निशा०—तो थोड़े ही दिन हुए। क्या पाते हो?

सोना—तीन रुपया महीना, खाना और कपड़ा।

निशा०—इतनी कम तनखाह में तुम लोगों के जैसे खानसामों का कैसे चलता है?

वात सुनकर तो सोना खानसामा जैसे गल गया, वोला—"क्या करें, यहाँ दूसरी नौकरी ही कहाँ मिलती है?"

निशा०—वाह, नौकरी की क्या कमी है? हमारे देश में चलने से लोग तुम्हें लोक लेंगे। पाँच, सात, दस रुपये तो अनायास ही पा सकते हो।

सोना—वड़ी दया होगी, यदि मुझे अपने साथ ले चलें तो।

निशा०—कैसे ले जाऊँ, ऐसे मालिक की नौकरी भला छोड़ोगे?

सोना—मालिक तो अच्छे हैं; लेकिन मालकिन पूरी हरामजादी है।

निशा०—इसका प्रमाण तो हाथों-हाथ पा रहा हूँ। मेरे साथ चलोगे जरूर न ?

सोना—पक्का समझिये।

निशा०—तो जानेके समय अपने मालिकका उपकार क्यों नहीं कर जाते ? लेकिन बड़ी सावधानीसे करना होगा। बोलो, कर सकोगे ?

सोना—भलाईका काम होगा तो क्यों न करूँगा ?

निशा०—तुम्हारे मालिकके लिये तो जरूर अच्छा है, लेकिन मालकिनके लिये तो अच्छा न होगा।

सोना—जब तो अभी बताइये, देरकी जरूरत नहीं। इसमें मैं बहुत खुश हूँगा।

निशा०—मालकिनने मुझसे कहला दिया है कि रातको अंधेरेमें छिपे-छिपे वह मुझसे चित्रा नदीके पक्के घाट पर मिलेंगी। मुझे वहाँ बैठनेके लिये कहा है। समझे ? मैंने भी स्वीकार कर लिया है। मेरी इच्छा है कि तुम्हारे मालिककी आंखें खोल दूँ। तुम धीरेसे यह बात अपने मालिकसे कह सकोगे ?

सोना—अभी यह पाप खोलके रहूँगा।

निशा०—अभी नहीं। अभी मैं घाट पर जाकर बैठता हूँ। तुम सावधान रहना, जब देखना कि मालकिन घाटकी तरफ चली गयीं, उसी समय जाकर अपने मालिकसे कह देना। रूपा यह बात जानने न पाये। इसके बाद मेरे पास आ जाना।

"जैसी आज्ञा" कह कर सोनाने निशाकरके पैरकी धूली माथे चढ़ायी। इसके बाद निशाकर मस्त चालसे हाथीकी तरह धीरे-धीरे टहलते हुए चित्रा नदीतटके पक्के घाट पर जा बैठे। अन्धकारमें नक्षत्रछायासे प्रदीप्त चित्राका जल शान्त बह रहा था। चारों तरफ स्यार-कुत्तोंकी आवाज हो रही थी। कहीं दूर पर किसी नाव पर बैठा हुआ मल्लाह राधाके अभिसारके गीत गा रहा था। इसके अतिरिक्त उस सन्नाटेमें और कोई शब्द होता न था। निशाकर बैठे हुए उस गीतको सुन रहे हैं और गोविन्दलालके मकानके दूसरे खंडकी खिड़कीसे निकली हुई रोशनीका दर्शन कर रहे हैं और मन-ही-मन सोच रहे हैं,—"मैं कैसा नृशंस हूं! एक स्त्रीका सर्वनाश करनेके लिये इतने कौशल कर रहा हूँ! लेकिन इसमें नृशंसता क्या है? दुष्टका दमन अवश्य ही कर्त्तव्य है। जब मित्रकी कन्याके जीवन रक्षाके लिये इस कार्यको पूरा करनेका जिम्मा मित्रके सामने लिया है, तो अवश्य करूँगा। लेकिन इस कार्यमें मेरा मन खुश नहीं है। रोहिणी पापिनी है, उसे पापका दण्ड दूँगा, पाप-प्रवाहको रोकूँगा, इसमें अप्रसन्न होकर क्या करेगी? नहीं कह सकता, शायद सीधी राह पकड़ने पर ही इतना सोच न होता। शायद टेढ़ी राह पकड़ने पर ही इतना संकोच हो रहा है। और फिर, पाप-पुण्यका दण्ड देनेवाला मैं कौन हूं? मेरे पाप-पुण्यका जो दण्ड–पुरस्कार करनेवाले हैं, वही रोहिणीका भी करेंगे। नहीं जानता, लेकिन शायद उन्होंने मुझे इस कार्यमें नियोजित किया है। कैसे जाने—

"त्वया हृषीकेश हृदिस्थितेन,
यथा नियुक्तोसि तथा करोमि।"

इस तरह चिन्ता करते-करते निशाकर को एक प्रहर रात बीत गयी। इसी समय निशाकर ने देखा कि बड़े ही धीरे-धीरे पैरों से चलती हुई रोहिणी आकर पास में खड़ी हो गयी। निश्चय को सुनिश्चित करने के लिये पूछा,—तुम कौन हो?"

रोहिणी ने भी निश्चय को सुनिश्चित करने के लिये पूछा,—"तुम कौन?"

निशा०—मैं हूँ रासविहारी।

रोहिणी—मैं रोहिणी हूँ।

निशा०—इतनी रात क्यों हुई?

रोहिणी—जरा बिना देखे-सुने कैसे चली आती?" कौन जाने, कोई वहीं से देख ले। तुम्हें बड़ी तकलीफ हुई।

निशा०—कष्ट हो या न हो, मन में डर अवश्य हो रहा था कि कहीं तुम भूल तो नहीं गयी।

रोहिणी—यदि मैं भूलनेवाली ही होती, तो आज मेरी यह दशा क्यों होती? एक को न भूल सकने के कारण इस देश में आई हूँ और आज तुम्हें न भूल सकने के कारण इस जगह आई हूँ।

यह बात हो ही रही थी कि ऐसे समय किसी ने पीछे से आकर रोहिणी का गला पकड़ लिया। रोहिणी ने काँप कर पूछा—"कौन है रे?"

गम्भीर स्वर में उत्तर मिला—"तुम्हारा यम।"

रोहिणी पहचान गयी कि गोविन्दलाल हैं। तब आसन्न विपद् समझ कर चारों तरफ अन्धेरा देखते हुए रोहिणी ने भीत विकम्पित स्वर में कहा,—"छोड़ो-छोड़ो ! मैं किसी बुरी नीयत से यहाँ नहीं आयी हूँ। मैं जिस गरज से आई हूँ इस बाबू से पूछ सकते हो।"

यह कहकर रोहिणी ने उधर उँगली उठाई, जिधर निशाकर बैठे थे। लेकिन उसने देखा कि वहाँ कोई नहीं है। निशाकर गोविन्दलाल को देखते ही पलक मारते न मालूम कहाँ अदृश्य हो गये। रोहिणी ने आश्चर्य से कहा,—"यहाँ तो कोई नहीं है ?"

गोविन्दलाल ने कहा,—"हाँ, यहाँ कोई नहीं है, मेरे साथ घर चलो।"

रोहिणी दुःखी हृदय से गोविन्दलाल के साथ धीरे-धीरे घर लौट गयी।

नवाँ परिच्छेद

घर लौटकर गोविन्दलाल ने नौकर आदि सबको मना कर दिया कि ऊपर कोई न आये।

उस्ताद जी अपने घर थे।

गोविन्दलाल ने रोहिणी के साथ अपने शयनकक्ष में पहुँच कर भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। सामने रोहिणी नदी स्रोत-विकम्पित बेंत के पेड़ की तरह खड़ी कांपने लगी। गोविन्द लाल ने मृदुस्वर में कहा,—"रोहिणी !"

रोहिणी बोली—"क्या ?"

गो०—तुमसे बहुतेरी बातें कहनी हैं।

रो०—क्या ?

गो०—तुम मेरी कौन हो ?

रो०—कोई नहीं। जितने दिनों तक पैरपर पड़ी रहने दें, दासी हूँ; अन्यथा कोई नहीं।

गो०—पैर छोड़कर मैंने तुम्हें माथेपर बिठाया था। राजों जैसा ऐश्वर्य, राजासे अधिक सम्पत्ति, अकलंक चरित्र, अत्याज्य धर्म, सबका तुम्हारे लिये त्याग कर दिया। तुम कौन हो, रोहिणी ! जिसके लिये मैं यह सब परित्याग कर वनवासी हुआ ? तुम कौन हो रोहिणी ! जो तुम्हारे लिये भ्रमर,—जगतमें अतुलनीय, दुःखमें अमृत, वह भ्रमर—उसे त्याग दिया ?

यह कहते हुए गोविन्दलाल दुःख-क्रोधके वेगको सम्भाल न सके और उन्होंने रोहिणीपर पदाघात किया।

रोहिणी गिर पड़ी। कुछ बोली नहीं, रोने लगी। लेकिन आँख के आँसू गोविन्दलाल देख न सके।

गोविन्दलालने कहा,—"रोहिणी ! खड़ी हो।"

रोहिणी खड़ी हो गयी।

गो०—तू एक वार मरनेके लिये गयी थी। फिर मरनेका साहस है ?

रोहिणी उस समय मृत्यु-कामना कर रही थी। बड़े ही कातर स्वरमें बोली,—"अब क्यों न मरना चाहूँगी ? भाग्यमें जो बदा था, वह हुआ।

गो०—तो खड़ी रहो। खबरदार, हिलना नहीं।

रोहिणी खड़ी रही।

गोविन्दलालने पिस्तौलका बाक्स खोला। पिस्तौल बाहर निकाला। वह भरी हुई थी। भरी ही रहती थी।

पिस्तौल लेकर और उसे रोहिणीके सामने तानकर गोविंदलाल ने कहा,—"बोलो मरना चाहती हो?"

रोहिणी विचारमें पड़ गयी। जिस दिन अनायास, अक्लेश, वारुणी जलमें डूब कर मरने गयी थी, आज वह दिन रोहिणी भूल गयी। वह दुःख नहीं, इसलिये वह साहस भी न रहा। उसने सोचा,—"क्यों मरूं? न हो, यह त्याग दें, त्याग दें, इन्हें कभी भूल नहीं सकती, लेकिन इतनेके लिये मरूँगी, क्यों? इनका मनमें ध्यान करूँगी; दुःखी अवस्था आनेपर भी इनका ध्यान करूँगी, इस प्रसादपुरकी सुखराशिका ध्यान करूँगी, यह भी तो एक सुख है, यह भी तो एक आशा है? मरूँ क्यों?"

रोहिणी बोली,—"न मरूँगी, मारना नहीं। चरणमें न रखो, विदा कर दो।"

गो०—दें?

यह कहकर गोविन्दलालने पिस्तौल उठाकर रोहिणीके ललाटका लक्ष्य किया।

रोहिणी काँप उठी। बोली,—"मारो मत! मेरी नयी उमर है; नये सुख हैं। मैं अब तुम्हें मुँह न दिखाऊँगी। अब तुम्हारी राहका रोड़ा न बनूँगी। अभी चली जाती हूँ। मुझे न मारो।"

गोविन्दलाल की पिस्तौल गर्जन कर उठी। बड़ा शब्द हुआ। इसके बाद सब अन्धकार। रोहिणी मर कर जमीन पर गिर पड़ी।

गोविन्दलाल ने पिस्तौल वहीं फेंक दी और वह बड़ी तेजी से घर के बाहर निकले।

पिस्तौल की आवाज सुनकर रूपा आदि नौकर देखने दौड़े। उन सबने देखा कि रोहिणी का शरीर बालक द्वारा विच्छिन्न पद्मिनी की तरह पड़ा हुआ है। गोविन्दलाल का कहीं पता नहीं है।

दसवाँ परिच्छेद

दूसरा वर्ष

उसी रात चौकीदार ने थाने में जाकर खबर दी कि प्रसादपुर की कोठी में खून हो गया है। सौभाग्यवश थाना वहाँ से ६ कोस दूर है। दारोगा के आने में दूसरे दिन का एक पहर बीत गया। आकर वह खून की तकतीश में लग गये। कायदे के मुताबिक उन्होंने सूरतहाल और लाश की पहचान रिपोर्ट सहित भेज दी। इसके बाद रोहिणी की लाश पोस्टमार्टम के लिये बाँध-छाँदकर एक बैलगाड़ी पर लाद कर भेज दी गयी। बाद में थानेदार ने स्नानादि कर भोजन किया। इसके उपरान्त अपराधी के अनुसन्धान में लग गये। गोविन्दलाल रोहिणीको मार कर उसी समय घर से भागे थे और फिर घर में लौटे न थे। कौन कह सकता है कि एक दिन और एक रात का अवसर पाकर गोविन्दलाल कितनी

दूर निकल गये होंगे ? किसी ने उन्हें देखा भी नहीं। वह किधर भागे हैं, यह भी कोई नहीं जानता। उनका नाम तक कोई जानता न था। गोविन्दलाल ने प्रसादपुर में आकर कभी भी अपना नाम-धाम प्रगट नहीं किया। वहाँ उन्होंने अपना नाम चुन्नीलाल दत्त प्रचारित किया था। उनके नौकर भी जानते न थे कि वह किस देश से यहाँ आये हैं। कभी इसको कभी उसको पकड़ कर गवाही लेते दरोगा घूमने लगे। लेकिन गोविन्दलाल का कोई अनुसन्धान वह लगा न सके। अन्त में उन्होंने अपनी वह रिपोर्ट पेश कर दी, जिसमें साफ लिख दिया था कि असामी फरार है।

इसके बाद यशोहर से फिचलखाँ नामक एक खुफिया जासूस इस मुकदमे की छान-बीन के लिये भेजा गया। फिचलखाँ की अनुसन्धान प्रणाली यहाँ सविस्तार लिखने की आवश्यकता नहीं। अवश्य ही उन्होंने कितने ही पत्र घर की तलाशी में पाये। उसके द्वारा उन्होंने गोविन्दलाल का प्रकृत नाम-धाम जान लिया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उन्होंने छद्मवेश में हरिद्राग्राम तक की यात्रा की। लेकिन गोविन्दलाल हरिद्राग्राम गये न थे अतः फिचलखाँ गोविन्दलाल को वहाँ न पा सकने के कारण वापस हो गया।

इधर निशाकरदास उस कराल-काल रात्रि में रोहिणी को अकेली विपन्न छोड़कर प्रसादपुर बाजार के अपने डेरे पर लौट आये। वहाँ माधवीनाथ उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। माधवीनाथ गोविन्दलाल के सुपरिचित ससुर हैं, इसलिये वह उनसे मिलने न गये थे। अब निशाकरने आकर सारा विस्तृत हाल उनसे कहा। सुनकर माधवी-

नाथने कहा,—"काम तो अच्छा नहीं हुआ। ऐसी अवस्थामें तो खून तक हो जा सकता है। इसका क्या परिणाम होता है, यह जाननेके लिये दोनों ही व्यक्ति प्रसादपुर बाजारमें छिपे हुए पता लगाने लगे। सवेरे ही यह समाचार उन्होंने सुना कि चुन्नीलाल दत्त अपनी स्त्रीका खूनकर भाग गया है। इस समाचारपर विशेष भीत होकर वह लोग शोकाकुल हुए। भय गोविन्दलालके लिये था, लेकिन अन्तमें उन्होंने देखा कि दारोगा कुछ कर न सका। गोविन्दलालका कोई पता नहीं है। इसपर वह लोग एक प्रकारसे निश्चिन्त, लेकिन उसपर भी बहुत दुखी हृदयसे उस जगहसे प्रस्थान किया।

—::※::—

ग्यारहवाँ परिच्छेद

तीसरा वर्ष

भ्रमर मरी नहीं। क्यों नहीं मरी, यह नहीं कह सकते। इस संसारमें सबसे बड़ा दुःख यह है कि मरनेके उपयुक्त समयपर कोई मरता नहीं। असमयमें सभी मरते हैं। शायद यही कारण है कि भ्रमर भी नहीं मरी। जो हो, भ्रमर भयानक रोगसे छूटकर कुछ अच्छी हुई है। इस समय भ्रमर फिर अपने पिताके घर है। माधवीनाथ गोविन्दलालका जो समाचार लाये थे, उनकी पत्नीने उसे एकान्तमें अपनी बड़ी लड़की—भ्रमरकी बहनसे कह दिया। उनकी बड़ी लड़कीने गुप्तरूपसे भ्रमरसे सब कहा। अब भ्रमरकी बड़ी बहन यामिनी बोली,—"अब वह अपने हरिद्राग्राममें आकर

क्यों नहीं रहते ? ऐसी अवस्थामें शायद कोई आपद्-विपद् न रहेगी।"

भ्रमर—विपद् कैसे न रहेगी ?

यामिनी—वह प्रसादपुरमें नाम बदल कर रहते थे। वही गोविन्दलाल बाबू हैं, यह कोई नहीं जानता।

भ्रमर—तुमने सुना नहीं कि हरिद्राग्राममें पुलिस जाँच करनेके लिये आयी थी ? तब भला कैसे नहीं जानती ?

यामिनी—मान लो कि वह जान गयी है। तब भी वहाँ जाकर अपनी सम्पत्तिपर अधिकार करके बैठनेसे उन्हें रुपयोंकी कमी न होगी। पिताजीका कहना है कि रुपयेसे पुलिस वशमें की जा सकती है।

भ्रमर रोने लगी। बोली—"यह परामर्श उन्हें कौन दे ? कहाँ उनसे मुलाकात होगी, कि यह सत्परामर्श उन्हें दिया जा सके। पिताजीने एक बार उनकी खोज-खबर ली, क्या एक बार फिर उनकी खोज-खबर न लेंगे ?

यामिनी—पुलिसवाले कितना पता लगानेमें तेज होते हैं, जब वही पता नहीं लगा पाते हैं, तो कैसे कहा जाय कि पिताजी पता लगा सकेंगे। लेकिन हमें ऐसा विश्वास होता है कि गोविन्दलाल खुद हरिद्राग्राममें आकर बैठेंगे। प्रसादपुरकी घटनाके बाद ही यदि वह गाँव लौट आते तो लोग सहज ही अनुमान लगा लेंगे कि यही गोविन्दलाल हैं, जो प्रसादपुरसे भागकर यहाँ आ बैठे हैं। जान पड़ता है; इसीलिये वह इतने दिनों तक फरार हैं और यहाँ

आते नहीं हैं। अब भरोसा है कि शायद आयें।

भ्र०—मुझे कोई भरोसा नहीं।

या०—यदि आयें?

भ्र०—यदि यहाँ आने से उनका मंगल हो, तो देवताओं के चरणों में मैं कायमनोवाक्य से प्रार्थना करती हूँ कि वह चले आयें, साथ ही यदि इसमें अमंगल हो, तो भगवान से यही मनाती हूँ कि वह कभी हरिद्राग्राम में न आयें। भगवान उन्हें ऐसी मति दें, जिसमें वह निरापद रह सकें।

या०—मेरे विचार से, बहन! तुम्हारा वहीं रहना कर्त्तव्य है। क्या जाने किस दिन वे रुपयों के अभाव में वहाँ आ जायें? शायद अमलों पर अविश्वास कर उनसे मुलाकात न करें। तुम्हें न देख-कर वह लौट जा सकते हैं।

भ्र०—मुझे यही तो रोग है। कब मरें—कब छुट्टी मिले—मैं वहाँ किसके आश्रय में रहूँगी?

या०—न हो, कहो हमलोगों में से कोई चलकर वहाँ तुम्हारे साथ रहे। फिर भी इस समय तुम्हारा वहीं रहना कर्त्तव्य है।

भ्रमर ने सोचकर कहा,—"अच्छा, मैं हरिद्राग्राम जाऊँगी। माँ से कह दो कि मुझे कल ही वहाँ पहुँचवा दें। अभी तुम लोगों में से किसी के जाने की जरूरत नहीं। लेकिन मेरी विपद् में तुम-लोग जरूर खड़ी हो जाना।"

या०—कैसी विपद्, भ्रमर?

भ्रमर ने रोते-रोते कहा,—यदि वह आ जायें?"

या०—इसमें विपद् कैसी भ्रमर ! तुम्हारा खोया हुआ धन यदि घर में आ जाये—तो इससे बढ़कर खुशी की और कौन-सी बात है ?

भ्रमर—खुशी, बहन ? मेरे लिये खुशी की क्या बात है ?

भ्रमर आगे बात कर न सकी। उसके मन की बात भ्रमर समझ न सकी। भ्रमर के रोने में मर्मघाती वेदना है, यामिनी उसे देख न सकी। यामिनी समझ न सकी कि गोविन्दलाल हत्याकारी है—खूनी है—भ्रमर इसे भूल नहीं पाती है।

—:०:—

बारहवाँ परिच्छेद

पाँचवाँ वर्ष

भ्रमर फिर ससुराल गयी। रोज प्रतीक्षा करने लगी—शायद स्वामी आ जायें। लेकिन स्वामी तो नहीं आये। दिन गये—महीने गये, लेकिन पति न लौटे। कोई खबर भी न मिली। इस तरह तीसरा वर्ष भी बीत गया। गोविन्दलाल न आये। इसके बाद चौथा वर्ष भी बीत गया, गोविन्दलाल न आये। इधर भ्रमर की बीमारी बढ़ती गयी। दमा-खाँसी का रोग है—नित्य क्षय को प्राप्त हो रहा है—वह यमराज की राह पर अग्रसर है—शायद इस जन्म में मुलाकात न होगी ?

पाँचवाँ वर्ष चलने लगा। पाँचवें वर्ष में बड़ा झमेला खड़ा हुआ। हरिद्राग्राम में खबर आयी कि गोविन्दलाल गिरफ्तार हो

गये हैं। खबर मिली कि गोविन्दलाल वैरागी वेशमें श्रीवृन्दावनमें वास कर रहे थे—वहींसे पुलिस गिरफ्तार कर उन्हें यशोहर ले गयी है। यशोहरमें उनपर मुकदमा चलेगा।

कान-ही-कान यह खबर भ्रमरको लगी। खबरका सूत्र यह है कि गोविंदलालने भ्रमरके दीवानको पत्र लिखा है कि "मैं जेल जा रहा हूँ—मेरी पैतृक संपत्तिसे रुपये खर्चकर मुझे बचाना यदि तुम लोग उचित समझते हो, तो यही समय है। मैं इसके योग्य नहीं हूँ। मुझे बचनेकी इच्छा नहीं है। फिर भी भिक्षा यही है कि फाँसी न चढ़ना पड़े। जनरव रूपमें यह खबर घरमें देना—यह न प्रकट करना कि मैंने पत्र लिखा है।" दीवानजीने पत्रकी बात प्रकट न की। किंवदन्ती रूपमें घरमें खबर भेजवा दी।

भ्रमरने सुनते ही पिताको बुलवानेके लिये आदमी भेजा। सुनते ही माधवीनाथ कन्याके पास पहुँच गये। भ्रमरने उनके सामने नोटोंका पचास हजारका बण्डल रखकर सजलनयन होकर कहा,—"बाबूजी! अब जो कुछ कर सकते हों, कीजिये।—देखो, मुझे आत्महत्या न करनी पड़े।"

माधवीनाथने भी रोते-रोते कहा,—"बेटी! निश्चिन्त हो जाओ। मैं आज ही यशोहरकी यात्रा करता हूँ। कोई चिन्ता न करना। गोविन्दलालने जो खून किया है, उसका कोई सबूत नहीं है। मैं प्रतिज्ञा करके जाता हूँ कि तुम्हारे अड़तालीस हजार रुपये बचा लाऊँगा—अपने दामादको घर लौटा लाऊँगा।"

इसके बाद माधवीनाथ ने यशोहर की यात्रा की। वहाँ जाकर

उन्होंने सुना कि प्रमाण की अवस्था बड़ी भयावह है। इन्सपेक्टर फिचल खाँ ने मुकदमे की छानबीन कर गवाह जुटाए हैं। उन्होंने रूपा-सोना वास्तविक चश्मदीद गवाहों को पाया ही नहीं। सोना निशाकर की सेवा में था और रूपा कहाँ किस देश में भाग गया है, पता नहीं। प्रमाण की यह दुरवस्था देखकर फिचल खाँ ने कुछ नगद खर्च कर तीन गवाह तैयार किये। गवाहों ने मजिस्ट्रेट के सामने जाकर कहा,—"हम लोगों ने अपनी आँखों से देखा कि गोविन्दलाल उर्फ़ चुन्नीलाल दत्त ने पिस्तौल से गोली चलाकर रोहिणी की हत्या की। हम लोग वहाँ गाना सुनने के लिये गये थे।" मजिस्ट्रेट साहब पक्के विलायती आचार-विचार वाले थे, उन्होंने तुरत इतने ही प्रमाण पर मुकदमा सेशन सुपुर्द कर दिया। जिस समय माधवीनाथ यशोहर पहुँचे, उस समय गोविन्दलाल जेल में पड़े सड़ रहे थे। माधवीनाथ ने पहुँचकर सारा हाल सुना और बड़े दुःखी हुए।

गवाहों का नाम-धाम मालूम कर माधवीनाथ उनके घर पहुँचे। उन्होंने उन लोगों से कहा,—"देखो, भाई! मजिस्ट्रेट के सामने जो कुछ कहना था कह चुके, अब जज के सामने दूसरे तरह की बातें कहनी होंगी। साफ़ कहना होगा कि हम इस बारे में कुछ नहीं जानते। यह पाँच-पाँच सौ नगद लो। आसामी के छूट जाने पर पाँच-पाँच सौ और दूँगा।"

गवाहों ने कहा,—"झूठी हलफ में जो दोषी ठहरेंगे, सो?"

माधवीनाथ ने कहा,—"डरो मत। मैं रुपये खर्चकर गवाहियों

से प्रमाणित करा दूँगा कि फिचल खाँ ने मार-पीट और डराकर तुम्हें मजिस्ट्रेट साहब के सामने झूठी गवाही देने के लिये वाध्य किया था।"

गवाहों के चौदह पुरखों ने भी कभी इकट्ठा हजार रुपये न देखे थे। वह सब उसी समय तैयार हो गये।

सेशन में विचार का दिन उपस्थित हुआ। गोविन्दलाल कठघरे के भीतर खड़े हुए। पहले गवाह ने उपस्थित होकर हलफ ली। सरकारी वकील ने उससे पूछा,—"तुम इस गोविन्दलाल उर्फ चुन्नीलाल को पहचानते हो?"

गवाह—नहीं, याद तो नहीं आता।

वकील—कभी देखा है?

गवाह—नहीं।

वकील—रोहिणी को पहचानते थे?

गवाह—कौन रोहिणी?

वकील—प्रसादपुर की कोठी में जो थी?

गवाह—हमारे बाप के पुरखे भी कभी प्रसादपुर की कोठी में नहीं गये।

वकील—रोहिणी कैसे मरी?

गवाह—सुना कि आत्महत्या की थी, उसने।

वकील—खून होने के बारे में कुछ जानते हो?

गवाह—कुछ नहीं।

इसपर वकील ने, गवाह मजिस्ट्रेट के सामने जो गवाही दे

चुका था, उसे पढ़कर सुनाया। फिर पूछा,—क्यों? तुमने मजिस्ट्रेट के सामने यह सब बातें कही थीं?"

गवाह—हाँ, कही थीं।

वकील—अगर कुछ नहीं जानते थे, तो क्यों कहा?"

गवाह—मारकी चोट से। फिचल खाँ ने मारने-पीटने में कुछ भी उठा नहीं रखा था।

यह कहता हुआ गवाह रो पड़ा। दो-चार दिन पहले जमीन के बारे में भाई से मार-पीट हुई थी, उसके दाग अभी तक थे। गवाह ने मौका पाकर उन्हीं दागों को फिचल खाँ की मारके दाग कह कर जज को दिखाये।

सरकारी वकील ने अप्रतिभ होकर दूसरे गवाह को बुलवाया। उस दूसरे गवाह ने भी वही बातें कहीं। उसने अपने पीठ पर नीले रंग के दाग बना दिये थे, उन्हें चोट बता कर दिखाया। हजार रुपयों के लिये सब कुछ हो सकता है।

तीसरे गवाह का भी वही हाल रहा। इस पर जज ने प्रमाणाभाव लिख कर असामी को रिहा कर दिया। साथ ही जज ने फिचल खाँ पर अत्यन्त रुष्ट होकर मजिस्ट्रेट को उसके चरित्र की जाँच का आदेश दिया।

विचार के समय गवाह की ऐसी हालत देखकर गोविन्दलाल विस्मित हुए। इसके बाद दर्शकों की भीड़ में उन्होंने जब माधवी-नाथ को देखा, उसी समय सब समझ गये। रिहा होने के बाद भी उन्हें एकबार फिर जेल-हवालात में जाना पड़ा। वहाँ से रिहाई का

परवाना प्राप्त होने पर वे रिहा हो सकते थे। वह जब जेल जा रहे थे, उसी समय कौशलतापूर्वक माधवीनाथ ने गोविन्दलाल के निकट होकर धीरेसे कहा,—"रिहाई पानेके बाद एकबार मुझसे मिलना। मेरा डेरा अमुक स्थानमें है।"

लेकिन गोविन्दलाल रिहा होनेके बाद माधवीनाथ के पास नहीं गये। कहाँ गये, कोई जान न सका। माधवीनाथ ने चार-पाँच दिनों तक उनकी खोज की, लेकिन कोई पता न लगा।

अन्तमें माधवीनाथको अकेले ही हरिद्राग्राम वापस आना पड़ा।

—:०:—

तेरहवाँ परिच्छेद

छठा वर्ष

माधवीनाथने भ्रमरको आकर खबर दी की गोविन्दलाल रिहा हो गये, लेकिन घर नहीं आये, कहाँ चले गये पता लग न सका। माधवीनाथके हट जानेपर भ्रमर खूब रोई। लेकिन किसलिये रोई नहीं कह सकते।

इधर गोविन्दलाल रिहा होते ही प्रसादपुर गये। जाकर उन्होंने देखा कि, वहाँ कुछ भी नहीं है। और कोई भी नहीं है। वहाँ जाकर उन्होंने सुना कि उस अट्टालिकामें जो कुछ था, उसमें बहुत कुछ तो लूट गया। जो कुछ बचा था, वह लावारिस कहकर नीलाम कर दिया गया। केवल मकान मात्र खड़ा है, उसके भी खिड़की-दरवाजे कितने ही भूत उठा ले गये। प्रसादपुर के

वाजारमें दो-एक दिन ठहरकर गोविन्दलालने मकान, ईंट-पत्थर पानीके मोल वेंचकर जो कुछ प्राप्त हो सका, लेकर कलकत्ते चले आये।

कलकत्तेमें वहुत ही गुप्त रूपसे और वहुत सामान्य अवस्थामें गोविन्दलाल अपना दिन विताने लगे। प्रसादपुरसे वहुत थोड़े ही रुपये अपने पास लाये थे, वह एक सालमें ही समाप्त हो गया। अव दिन वीतनेकी भी सम्भावना न रही। तव ६ वर्षोंके वाद गोविन्दलालने सोचा कि भ्रमरको एक पत्र लिखूँ।

गोविन्दलाल कागज, कलम, दावात लेकर भ्रमरको पत्र लिखने के लिये वैठे। हम सत्य कहेंगे—पत्र लिखने वैठकर गोविन्दलाल वहुत रोये। रोते-रोते उन्होंने मनमें सोचा कि इसी का क्या ठिकाना है कि भ्रमर जिन्दा है? किसे पत्र लिखूँ? इसके वाद फिर सोचा, एक वार लिखकर तो देखूँ। यदि पत्र लौट आया, तो समझ जाऊँगा—भ्रमर नहीं है।

क्या लिखें? इस भावनामें कितनी देर तक गोविन्दलाल वैठे रहे, कैसे वताया जाय? अन्तमें उन्होंने सोचा, जिसे विना दोष मृतके समान छोड़ दिया, यहीं दोष लिखनेमें हर्ज क्या है? अन्तमें वहुत-सोच-समझकर गोविन्दलालने पत्र लिखा,—

"भ्रमर!

६ वर्षोंके वाद यह पापी फिर तुम्हें पत्र लिख रहा है। इच्छा हो पत्र पढ़ना, न इच्छा हो, विना पढ़े ही फाड़ फेंकना।

"मेरे भाग्यमें जो कुछ वदा था और जो-जो हुआ, शायद तुमने

सब सुना होगा। यदि कहूँ कि यह सब मेरा कर्मफल था तो शायद तुम समझोगी कि तुम्हारा मन रखनेके लिये मैं ऐसा लिख रहा हूँ। क्योंकि आज मैं तुम्हारे आगे भिखारी हूँ।

"मैं इस समय कंगाल हूँ। तीन वर्षों तक भिक्षा मांगकर पेट चलाया। तीर्थ-स्थानमें था—तीर्थ स्थान में भिक्षा मिल जाती थी। यहां भीख भी नहीं मिलती—फलतः मैं अन्नके अभावमें मर रहा हूँ।

"मेरे जानेकी एक जगह थी—काशी में माता की गोद में। लेकिन माँ का काशीवास हो गया है, शायद यह जानती होगी। फलतः मेरे लिये अब स्थान भी नहीं—अन्न भी नहीं।

"इसीलिये, मैंने मनमें सोचा है, हरिद्राग्राम में फिर अपना काला मुंह दिखाऊंगा—अन्यथा खाऊंगा क्या? जिसने तुम्हें विना अपराध परित्याग कर, स्त्री हत्या तक की, उसे अब काहे की लज्जा? मैं अपना काला मुँह दिखा सकता हूँ—लेकिन तुम सम्पत्तिकी अधिकारिणी हो—घर तुम्हारा है—मैंने तुमसे वैर किया है—क्या तुम मुझे स्थान दोगी?

"पेटकी ज्वालासे तुम्हारा आश्रय चाहता हूँ—क्या न दोगी?"

इस तरह पत्र लिखकर नीचा-ऊंचा विचार कर अन्त में गोविन्दलालने उसे डाक में छोड़ दिया। यथाकाल भ्रमर के हाथ में पहुँचा।

पत्र पाते ही भ्रमर अक्षर पहचान गयी। पत्र खोलकर कांपते-कांपते भ्रमर ने जाकर अपने शयनगृह का दरवाजा बन्द कर

लिया। तब एकान्त में बैठकर भ्रमर आँखों से जलधार आँसू बहाती हुई पत्र पढ़ने लगी। उसने उस पत्र को एक बार, दो बार, सौ बार, हजार बार, बार-बार पढ़ा। उस दिन भ्रमर ने फिर अपना दरवाजा न खोला। खाने-पीने के लिये जिसने आकर पुकारा, सबसे उसने कह दिया कि "मुझे बुखार आ गया है, मैं न खाऊँगी।" भ्रमरको सदा ही ज्वर रहता है, लोगों ने विश्वास कर लिया।

दूसरे दिन निद्राशून्य शय्या से जब भ्रमर उठी, तो सचमुच उसे ज्वर था। लेकिन उस समय चित्त स्थिर था—विकार रहित था। पत्रका उत्तर जो लिखना होगा, उसने पहले ही सोच लिया था, भ्रमरने उसे सहस्र-सहस्र बार विचार कर स्थिर किया था, अब उसे सोचने की जरूरत न हुई। सारी बातें पहले से स्थिर कर ली थीं।

उसने पत्र में 'सेविका' नहीं लिखा। लेकिन पति हर अवस्था में प्रणम्य है, अतः उसने लिखा,—

"प्रणाया शतसहस्र निवेदनञ्च विशेष।"

इसके बाद लिखा,—"आपका पत्र प्राप्त हुआ। सम्पत्ति आपकी है। मेरी होनेपर भी मैं उसे दान कर चुकी हूँ। आपको याद होगा, जाने के समय आपने उसी दान-पत्र को फाड़कर फेंक दिया था। लेकिन रजिस्ट्रेशन आफिस में उसकी नकल है। मैं जो दान कर चुकी हूँ यह बात प्रमाणित है। आज भी वह वर्त्तमान है।

"अतएव आप निर्विघ्न हरिद्राग्राम आकर अपनी सम्पत्तिपर अधिकार कर सकते हैं। घर आपका है।

"इन रुपयों में थोड़ेकी मैं प्रार्थना करती हूँ। आठ हजार रुपये उसमें से मैं लेती हूँ। तीन हजार रुपयों से गङ्गातटपर मैं एक मकान बनाऊँगी और शेष पाँच हजार रुपये मेरी जीविका के लिये यथेष्ट हैं।

"आपके आने का सारा बन्दोबस्त कर मैं पित्रालय चली जाऊँगी। जब तक मेरा नया मकान नहीं बन जाता, तब तक मैं पिता के घर रहूँगी। आप के साथ इस जन्म में कोई साक्षात् की सम्भावना नहीं है। इसमें मैं सन्तुष्ट हूं—आप भी सन्तुष्ट होंगे, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।

"मैं आपके दूसरे पत्र की प्रतीक्षा में हूँ।"

यह पत्र यथासमय गोविन्दलाल के पास पहुँचा। उफ! कैसा भयानक पत्र है! जरा भी कोमलता नहीं। गोविन्दलाल ने भी लिखा था—६ वर्ष बाद लिखता हूँ, लेकिन भ्रमर के पत्र में वह बात भी नहीं। यह वही भ्रमर है।

गोविन्दलाल ने पत्र पढ़ कर लिखा,—"मैं हरिद्राग्राम न आऊँगा; जिससे मेरा यहाँ गुजारा हो सके, ऐसी मासिक भिक्षा मुझे यहीं भेज दिया करो।"

भ्रमर ने उत्तर लिखा,—"हर महीने पाँच सौ रुपये भेजूँगी। और अधिक भेज सकती हूँ, लेकिन इस डर से नहीं भेजती हूं कि उसका अपव्यय हो सकता है। इन कई वर्षों में मैंने बहुत कुछ रुपये जमा किये हैं, वह सब आपके हैं। साथ ही एक निवेदन और है, हर वर्ष के खर्च से जो रुपये बच रहे हैं और जमा हैं,

यहां आकर यदि आप उनका भोग करें, तो बहुत अच्छा हो। मेरे लिये देशत्यागी न होइयेगा—मेरे दिन तो समाप्त हो रहे हैं।"

गोविन्दलाल कलकत्ते में ही रहे। दोनों ही समझ गये; यही अच्छा है।

—:o:—

चौदहवाँ परिच्छेद

सातवाँ वर्ष

सचमुच भ्रमर के दिन समाप्त हो रहे हैं। बहुत दिनों से भ्रमर की सांघातिक पीड़ा चिकित्सा की वजह से उपशमित थी। लेकिन रोग अब चिकित्सा से बली हो गया था। भ्रमर का दिन प्रतिदिन क्षय हो रहा है।

अगहन के महीने में भ्रमर खाटपर पड़ गयी। फिर उसने शय्या का त्याग न किया। माधवीनाथ स्वयं आकर और पास में रहकर निष्फल चिकित्सा कराने लगे। यामिनी भी हरिद्राग्राम में आकर भ्रमर की अन्तिम सेवा-सुश्रूषा में लग गयी।

रोग चिकित्सा से दबा नहीं। पूस का महीना भी इसी तरह बीता। माघ में भ्रमर ने औषधि खाना छोड़ दिया। औषधि-सेवन अब व्यर्थ था। उसने यामिनी से कहा—"अब दवा न खाऊँगी, बहन! सामने ही फाल्गुन का महीना है—फाल्गुन मास की पूर्णिमा की रात को मरूँगी। देखना बहन! फाल्गुन की वह पूर्णिमा बीतने न पाये। अगर देखना कि फाल्गुनकी पूनम की रात बीतना चाहती

है—तो गला दबा देना न भूलना। रोग से हो, गला दबाकर हो, फाल्गुन की वह ज्योत्स्ना रात्रि को मरना ही होगा। याद रखना, बहन !"

यामिनी रोई—लेकिन भ्रमर ने फिर दवा न खाई। औषधि खाती न थी—रोग शान्त न था—लेकिन भ्रमर दिन-पर-दिन प्रसन्न वदन हो रही थी।

इतने दिनों के बाद भ्रमर ने फिर हँसी-तमाशा शुरू किया।—पूरे ६ वर्ष के बाद यह हँसी-तमाशा था। दीप बुझने के पहले तेज-उद्दीप्त हो रहा था।

जितने दिन जाने लगे—अन्तिमकाल जितना समीप आने लगा, भ्रमर उतनी ही स्थिर, प्रफुल्ल हास्यमूर्ति बन रही थी। अन्त में वह भयंकर आखिरी दिन उपस्थित हुआ। भ्रमर परिजनों की चञ्चलता, और यामिनी का रोना देखकर समझ गयी कि शायद आज दिन पूरा हुआ। शरीर की यन्त्रणा से भी ऐसा ही अनुभव होने लगा। तब भ्रमर ने यामिनी से कहा,—"आज अन्तिम दिन है।"

यामिनी रो पड़ी। भ्रमर बोली,—बहन ! आज आखिरी दिन है—मेरी कुछ भिक्षा है—मेरा मन रख देना।"

यामिनी रोती रही—जवाब दे न सकी।

भ्रमर बोली—"मेरी एक भिक्षा है—आज रोना नहीं !—मेरे मर जाने पर रो लेना। मैं मना करने न आऊँगी—लेकिन

आज तुम लोगों से कई बातें कहनी हैं, कह सकूँगी तो बिना कष्ट के मर सकूँगी, यही साध है।

यामिनी आँखों का आँसू पोंछ कर पास में बैठी, लेकिन गला भरा होने के कारण, हृदय-रुलाई से भरा रहने के कारण वह बोल न सकी।

भ्रमर बराबर कहती गयी,—"और एक भिक्षा—तुम्हें छोड़ कर यहाँ और कोई न आये। समय पर सबके साथ मुलाकात कर लूँगी—लेकिन अभी यहाँ कोई न आये।"

यामिनी कितनी देर रुलाई रोक सकती थी?

क्रमशः रात होने लगी। भ्रमर ने पूछा,—"दीदी! रात कैसी जोत्स्नामयी है—कैसी बहारदार चाँदनी है?"

यामिनीने खिड़की के पल्ले खोलकर कहा—गजब की चाँदनी है!"

भ्र०—तो सारी खिड़कियाँ खोल दो। मैं चाँदनी देखकर मरूँगी। जरा देखो तो, इस खिड़की के नीचे जो बगीचा है, उसमें फूल फूले हैं या नहीं?"

इसी खिड़की के पास खड़ी होकर प्रातःकाल भ्रमर गोविन्दलाल से बातें करती थी। आज सात वर्ष हुए भ्रमर इन खिड़कियों के पास नहीं जाती—वह खिड़कियाँ खोली न गयीं।

यामिनी बड़े कष्ट से उस खिड़की को खोलकर और फिर देखकर बोली,—"कहाँ, यहाँ तो बगीचा है ही नहीं। यहाँ तो केवल खड़का वन है—दो-एक मरे-सूखे पेड़ हैं लेकिन उनमें फूल कहाँ?"

भ्रमर बोली,—"सात वर्ष हुए यहाँ पहले लहलहाता बाग था। कुसेवा हो गया। मैंने सात वर्षसे नहीं देखा।"

बहुत देर तक भ्रमर चुप रही। इसके बाद वह फिर बोली,—"जहाँसे हो सके दीदी! आज मुझे फिर फूल मँगा दो। देखती नहीं हो, आज मेरी फूल-शय्या है।

यामिनीकी आज्ञा पाते ही दास-दासियोंने राशि-राशि फूल ला दिये। भ्रमरने कहा,—"फूल मेरे बिछौना पर छिड़क दो—आज मेरी फूल-शय्या है।"

यामिनीने वैसा ही किया। तब भ्रमरकी आँखोंसे जलकी धारा बह पड़ी। यामिनीने कहा,—"बहन! क्यों रोती हो?"

भ्रमर बोली,—"दीदी! एक ही दुःख बहुत बड़ा रह गया। उस दिन वह मुझे त्यागकर काशी गये, उसी दिन हाथ जोड़कर भगवानसे भिक्षा चाही थी, एक दिन उनके साथ मुलाकात हो जाये। बड़ी स्पर्द्धाके साथ मैंने कहा था, यदि मैं सती होऊँगी तो उनके साथ मेरी फिर मुलाकात होगी। लेकिन कहाँ, फिर तो मुलाकात न हुई। आजके दिन मृत्युके दिन दीदी! यदि एक बार फिर मुलाकात हो जाती। एक दिनमें दीदी! सात वर्षके दुःख भूल जाती।"

यामिनीने कहा,—देखोगी?" भ्रमर बिजलीकी तरह चमक कर बोली,—"किसकी बात कहती हो?"

यामिनीने स्थिर होकर कहा,—"गोविन्दलालकी बात। वह यहाँ आ गये हैं। बाबूजीने उन्हें तुम्हारी बीमारीका समाचार दिया था। उसे सुनकर वह एक बार तुमसे मिलने आये हैं। आज ही

पहुँचे हैं। तुम्हारी अवस्था देखकर भय से अभीतक तुम से कह न सकी। वह भी साहसकर आ नहीं पाते हैं।"

भ्रमर ने रोकर कहा,—"एक बार मिला दो, दीदी! इस जन्म में और एक बार देखूं, इस समय बस एक बार और!

यामिनी उठकर गयी। थोड़े ही देर बाद निःशब्द पैर रखते हुए गोविन्दलाल—सात वर्ष के बाद अपने शयनगृह में फिर आये।

दोनों ही रो रहे थे। उनमें से एक भी बात कर न सका। भ्रमर ने स्वामी के पास आकर बिछौने पर बैठने का इशारा किया। गोविन्दलाल रोते-रोते आकर बिछौने पर बैठे। भ्रमर ने उन्हें और समीप आने के लिये कहा—गोविन्दलाल और समीप आ गये। इसके बाद भ्रमर ने अपनी पहुँचके अन्दर आये पैरोंकी धूली हाथ से उठाकर कपालपर लगाई। बोली,—"आज मेरे सारे अपराधों को क्षमा कर, आशीर्वाद दो कि मैं जन्मजन्मान्तर में सुखी होऊं।

गोविन्दलालके मुंहसे कोई शब्द निकल न पाये। उन्होंने भ्रमर का हाथ अपने हाथमें ले लिया। इसी तरह हाथमें हाथ रहा। बहुत देर तक रहा। भ्रमरने निःशब्द प्राण-त्याग किया।

—✿—
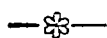
पंद्रहवां परिच्छेद

भ्रमर मर गयी। यथा रीति उसका अन्तिम संस्कार हुआ। संस्कार कर गोविन्दलाल आकर घर बैठे। लौटनेके बादसे अबतक उन्होंने किसीके साथ बातें न की थीं।

फिर रात हुई। भ्रमर की मृत्यु के दूसरे दिन जैसे सूर्य सदा उगते थे वैसे ही उगे। वृक्ष के पत्ते छायालोक से चमक उठे। सरोवर का कृष्णवर्ण जल लहरें लेता हुआ चमक उठा। आकाश के काले मेघ सादे दिखाई देने लगे।—मानो भ्रमर मरी ही नहीं। गोविन्दलाल बाहर निकल आये।

गोविन्दलाल ने दो स्त्रियों से प्रेम किया था—भ्रमर से और रोहिणी से। रोहिणी मरी—भ्रमर भी मरी। रोहिणी के सौन्दर्य पर आकृष्ट हुए थे—यौवन की अतृप्त रूप-तृष्णा शान्त कर न पाये। भ्रमर को त्याग कर उन्होंने रोहिणी को ग्रहण किया था। रोहिणी को ग्रहणकर वह जान गये कि यह भ्रमर नहीं है—यह रूप तृष्णा है; यह स्नेह नहीं; ओस है, यह सुख नहीं-यह मन्दारघर्षण पीड़ित, वासुकी स्वास-निर्गत महा हलाहल है, यह धन्वन्तरी के भाण्ड से निर्गत सुधा नहीं है। समझ गये कि इस हृदय-सागर को मंथन पर मंथन कर उन्होंने जो हलाहल निकाला है, वह अपरिहार्य है, उसे पान करना ही पड़ेगा—नीलकंठ की तरह गोविंदलाल ने भी उस विष का पान किया। नीलकंठ के विष की तरह यह विष भी गोविंदलाल के कण्ठ में जैसा लगा रहा। वह विष पुराना होने का नहीं—वह विष उद्‌शीर्ण होने का नहीं। लेकिन वह पहले का चखा हुआ स्वादिष्ट विशुद्ध भ्रमर—प्रणय—सुधा—स्वर्गीय गंधयुक्त, चित्त पुष्टिकर सर्वरोग हर औषधि के रूप में रात-दिन स्मृति पट पर नाचने लगा। जिस समय प्रसादपुर रोहिणी के संगीत—स्रोत में डूबा हुआ था, उस समय भी भ्रमर उनके चित्त में

प्रबल प्रतापयुक्त अधीश्वरी की तरह हृदय में थी, रोहिणी बाहर थी। उस समय भ्रमर अप्राप्यनीया, रोहिणी अत्याज्या थी—लेकिन उस समय भी भ्रमर अन्दर, रोहिणी बाहर थी। इसी कारण रोहिणी इतनी जल्दी मरी। यदि कोई इस बात को न समझ सके—तो मेरा यह आख्यायिका लिखना व्यर्थ है।

कभी-कभी गोविंदलाल रोहिणी की यथाविहित व्यवस्था कर स्नेहमयी भ्रमर के पास हाथ जोड़कर खड़े होते,—कहते कि "मुझे क्षमा करो, मुझे फिर अपने हृदय में स्थान दो।" यदि कहते—"मुझमें इतना गुण नहीं कि तुम्हें क्षमा कर सकूँ, लेकिन तुममें तो अनेक गुण हैं, तुम अपने गुणों से मुझे क्षमा कर दे।" शायद ऐसा होने से भ्रमर इन्हें क्षमा कर देती। क्योंकि रमणी क्षमामयी, दयामयी, स्नेहमयी होती है—स्त्रियाँ ईश्वर की कीर्ति की चरमोत्कर्ष हैं; भगवान की छाया है, पुरुष भगवान के सृष्टि मात्र। स्त्री आलोक है—पुरुष छाया। आलोक कभी छाया का त्याग कर सकती है?

लेकिन गोविंदलाल वह सब कर न सके। शायद अहंकारवश-पुरुष अभिमान से भरे होते हैं। कुछ लज्जा—दुष्कृतकारियों का दण्ड लज्जा है। कुछ भय—पाप सहज ही पुण्य के सन्मुख जा नहीं सकता। भ्रमर के सामने मुँह दिखाने लायक न रहे। गोविंदलाल अधिक आगे बढ़ नहीं सके, उसपर गोविन्दलाल खूनी। उस समय तो गोविंदलाल की रही-सही आशा भी जाती रही। अंधेरा उजाले का सामना न कर सका।

यह सब होने पर भी पुनः प्रज्ज्वलित दूव का दाहकारी भ्रमरके

दर्शन की लालसा, वर्ष-वर्ष में, मास-मास में, दिन-दिन में, दण्ड-दण्ड, पल-पल गोविन्दलाल को जलाने लगी। किसने ऐसा पाया है? किसने इस तरह खोया है? भ्रमर ने भी तकलीफ पायी, गोविन्दलाल ने भी कष्ट पाया। लेकिन गोविन्दलाल की तुलना में भ्रमर सुखी थी। गोविन्दलाल का दुःख मनुष्य देह के लिये असह्य था। भ्रमर के सहायक भी थे। गोविन्दलाल को वह भी सहाय न थे।

फिर रात समाप्त हुई—फिर सूर्यालोक से जगत् हँस उठा। गोविन्दलाल घर के बाहर निकले। रोहिणी का खून गोविन्दलाल ने अपने हाथ से किया था—भ्रमर का खून भी उन्होंने अपने हाथ से किया था। इसलिये सोचते-सोचते वह बाहर निकले।

हम नहीं जानते कि वह रात गोविन्दलाल ने कैसे काटकर बिताई थी। शायद रात भयानक रूप में दुःखदायी ही रही। दरवाजा खोलते ही उनकी मुलाकात माधवीनाथ से हुई। माधवीनाथ गोविन्दलाल का चेहरा देखते रह गये। वह चेहरा भयानक रोगी का था। उस पर भयानक रोग की छाया पड़ चुकी थी।

माधवीनाथ ने उनसे बात न की। मन-ही-मन उन्होंने प्रतिज्ञा की कि इस जनम में वह गोविन्दलाल से भाषण न करेंगे। बिना बोले ही माधवीनाथ लौटकर चले गये।

गोविन्दलाल घर से निकल कर भ्रमर के शयनकक्ष के नीचे के उस उद्यान में गये। यामिनी ने सच कहा था कि उस बाग में फूल नहीं है। सनूचा बगीचा घास-फूस और सूखे वृक्षों में परिवर्तित

हो गया था। दो-एक अमर वृक्ष आज भी अधमरे के समान खड़े थे। लेकिन इसमें फूल न थे। गोविन्दलाल बहुत देर तक उस जंगल में घूमते रहे। बहुत देर हुई। धूप की तेजी बहुत बढ़ गई। गोविन्दलाल घूमते-घूमते अन्त में थककर वहाँ से निकले।

वहाँ से निकल कर गोविन्दलाल किसी से न बोलकर और कहीं न जाकर उस वारुणी पुष्करिणी तटपर गये। दोपहर हो चली थी। तेज धूप के कारण वारुणी का कृष्णजल तप रहा था। स्त्री-पुरुप अनेक लोग घाटपर स्नान कर रहे थे। लड़के जल में तैर रहे थे। गोविन्दलाल को वह भीड़ भली जान न पड़ी। वारुणी घाट से जिधर नन्दनतुल्य पुष्पोद्यान था, गोविन्दलाल वहाँ गये। पहले ही उन्होंने देखा—रेलिंग टूट गयी है—लौह निर्मित विचित्र द्वार की जगह बाँस का टट्टर लगा हुआ था। भ्रमर ने गोविन्दलाल की सारी सम्पत्ति बड़े यत्न से रक्षा की थी, लेकिन उसने इस उद्यान की तरफ बिलकुल ध्यान दिया न था। एक यामिनी ने इस उद्यान की बात कही थी, जिस पर भ्रमर ने कहा था—"मैं तो यम के घर चली—मेरा यह नन्दन-कानन ध्वंस हो। दीदी! पृथ्वी पर मेरे लिये जो स्वर्ग था, उसे किसके लिये छोड़ जाऊँ?"

गोविन्दलाल ने देखा कि फाटक नहीं है—रेलिंग टूट गयी है। प्रवेश कर देखा, फूल के वृक्ष नहीं है। केवल मदार, 'कच्चू और घेंटू' के फूल के पेड़ों से बगीचा भरा हुआ है। लतामण्डप सूख-टूट कर गिर पड़े हैं। आदमकद पत्थर की मूर्त्तियाँ भी दो-तीन टुकड़ों में टूट कर जमीनपर गिरी हुई हैं। उनपर लताओं का झंखाड़ जमा है।

कुछ टूटी हुई ही खड़ी हैं। प्रमोद भवन की छत गिर पड़ी है। कमरे में लगे मर्मर-पत्थर कोई उखाड़ ले गया है। उस बाग में न तो अब फूल फूलते हैं; न फल लगाते हैं—शायद वह मृदुल वायु भी अब नहीं बहती।

एक टूटी हुई मूर्त्ति के पैरों के पास गोविन्दलाल बैठ गये। क्रमशः दोपहर हो गयी, लेकिन गोविन्दलाल वहीं बैठे रहे। प्रचण्ड धूप के कारण उनका माथा लाल हो गया। लेकिन गोविन्द-लाल ने इसका कुछ भी अनुभव नहीं किया। उनके प्राण छटपटा रहे थे। रात भर सिर्फ भ्रमर और रोहिणी का ध्यान करते रह गये थे। एक बार भ्रमर फिर रोहिणी, फिर भ्रमर फिर रोहिणी। सोचते-सोचते मानों वह आँखों से भ्रमर को देखने लगे। फिर रोहिणी को भी देखने लगे—जगत् भ्रमर-रोहिणी मय हो उठा। उस उद्यान में बैठकर वह हर वृक्ष को भ्रमर का अनुमान करने लगे। देखने लगे कि हर पेड़ की छाया में रोहिणी बैठी है। वह भ्रमर बैठी है—अब नहीं हैं, वह रोहिणी खड़ी है—अब गायब। इन शब्द को भ्रमर और रोहिणी की आवाज समझने लगे। घाटपर स्नान करनेवाले आपस में बातें कर रहे थे, गोविन्दलाल को जान पड़ा कि कभी भ्रमर बोलती है, कभी रोहिणी बोलती है—कभी दोनों एक साथ आपस में बातें करती हैं। सूखे पत्ते खड़के—मालूम हुआ कि भ्रमर आ रही है। बाग में जंगली कीड़े दौड़ते हैं—जान पड़ता है, रोहिणी भाग रही है। हवा से शाखायें हिलती हैं—मानो भ्रमर श्वास ले रही है। कोयल की आवाज रोहिणी की